३. वर्गणाखण्ड - विचार

षट्खण्डागमके छह खण्डोंका परिचय प्रथम जिल्दकी भूमिकामें कराया जा चुका है। वहां यह बतलाया गया है कि उन छह खण्डोंमें से प्रथम पाच अर्थात् जीवट्ठाण, खुद्दाबंध, बंधसामित्तविजय, वेदणा और वग्गणा उपलब्ध धवलाकी प्रतियोंमें निबध्द है तथा शेष छठवां अर्थात् महाबंध स्वतंत्र पुस्तकारुढ है, जिसकी प्रतिलिपी अभीतक मूडविद्री मठके बाहर उपलब्ध नहीं है। इनमेंसे चार खण्डोंके सम्बन्धमें तो कोई मतभेद नहीं है, किन्तु वेदना और वर्गणा खंडकी सीमाओंकें सम्बन्धमें एक शंका उत्पन्न की गई है जो यह है कि “ धवलग्रन्थ वेदना खंडके साथ ही समाप्त हो जाता है-वर्गणाखंड उसके साथमें लगा हुआ नहीं है।” इस मतकी पुष्टिमें जो युक्तियां दी गई हैं वे संक्षेपत: निम्न प्रकार है ---

१. जिस कम्मपयडिपाहुडके चौवीस अधिकारोंका पुष्पदन्त-भूतबलिने उध्दार किया है उसका दूसरा नाम ‘वेयणकसिणपाहुड’ भी है जिससे उन २४ अधिकारोंको ‘वेदनाखंड’ के ही अन्तर्गत होना सिध्द होता है।

२. चौवीस अनुयोगव्दारोंमें वर्गणा नामका कोई अनुयोगव्दान भी नहीं है। एक अवान्तर अनुयोगव्दारके अवान्तर भेदान्तर्गत संक्षिप्त वर्गणा प्ररुपणाको ‘वर्गणाखण्ड’ कैसे कहा जा सकता है?

३. वेदनाखंडके आदिके मंगलसूत्रोंकी टीकामें वीरसेनाचार्यने उन सूत्रोंको ऊपर कहे हुए वेदना, बंधसामित्तविचय और खुद्दाबंधका मंगलाचरण बतलाया है और यह स्पष्ट सूचना की है कि वर्गणाखंडकेआदिमें तथा महाबंधखंडके आदिमें पृथक् मंगलाचरण किया गया है। उपलब्ध धवलाके शेष भागमें सूत्रकारकृत कोई दूसरा मंगलाचरण नहीं देखा जाता, इससे वह वर्गणाखंडकी कल्पना गलत है।

४. धवलामें जो ‘वेयणाखंड समत्ता’ पद पाया जाता है वह अशुध्द है। उसमें पडा हुआ ‘खंद’ असंगत है जिसके प्रक्षिप्त होनेमें कोई सन्देह मालूम नहीं होता।

५. इन्द्रनन्दि और विबुधश्रीधर जैसे ग्रन्थकारोंने जो कुछ लिखा है वह प्राय: किंव्रदन्तियें अथवा सुने-सुनाये आधारपर लिखा जान पडता है। उनके सामने मूल ग्रन्थ नहीं थे, अतएव उनकी साक्षीको कोई महत्व नहीं दिया जा सकता।

६. यदि वर्गणाखंड धवलाके अन्तर्गत था तो यह भी हो सकता है कि लिपिकारने शीघ्रतावश उसकी कापी न की हो और अधूरी प्रतिपर पुरस्कार न मिल सकने की आशंकासे उसने ग्रन्थकी अन्तिम प्रशस्तिको जोडकर ग्रन्थको पूरा प्रकट कर दिया हो१ (जैनसिध्दान्त भास्कर ६, १ पृ. ४२ अनेकान्त ३, १ पृ. ३)

अब हम इन युक्तियोंपर क्रमश: विचार कर ठीक निष्कर्षपर पहुंचनेका प्रयत्न करेंगे।

१ वेयणकसिणपाहुड और वेदनाखंड एक नहीं है।

यह बात सत्य है कि कम्मपयडिपाहुडका दूसरा नाम वेयणकसिणपाहुड भी है और यह गुण नाम भी है, क्योंकि, वेदना कर्मोके उदयको कहते हैं और उसका निरवशेषरुपसे जो वर्णन करता है उसका नाम वेयणकसिणपाहुड (वेदनकृत्स्नप्राभृत) है। किन्तु इससे यह आवश्यक नहीं हो जाता कि समस्त वेयणकसिणपाहुड वेदनाखंडके ही अन्तर्गत होना चाहिये, क्योंकि यदि ऐसा माना जावे तब तो छह खंडोंकी अवश्यकता ही नहीं रहेगी और समस्त षट्खण्ड वेदनाखण्ड केही अन्तर्गत मानना पडेंगे चूंकी जीवट्ठाण आदि सभी खण्डोंमें इसी वेयणकसिणपाहुडके अंशो का ही तो संग्रह किया गया है जैसा कि प्रथम जिल्दकी भूमिकामें दिये गये मानचित्रों तथा संतपरुवणा पृ. ७४ आदिके उल्लेखोंसे स्पष्ट है। यह खंड-कल्पना कम्मपयडिपाहुड या वेयणकसिणपाहुडके अवान्तर भेदोंकी अपेक्षासे की गई है, किसी एक खंडको समूचे पाहुडका अधिकारी नही बनाया गया। स्वयं धवलाकारने वेदनाखण्डको महाकम्मपयडिपाहुड समझ लेनेके विरुध्द पाठकोंको सतर्क कर दिया है। वेदनाखंडके आदिमें मंगलके निबध्द अनिबध्दका विवेक करते समय वे कहते हैं -

‘ण च वेयणाखण्डं महाकम्मपयडिपाहुडं, अवयवस्स अवयवित्तविरोहादो’

अर्थात् वेदनाखण्ड महाकर्मप्रकृतिप्राभृत नहीं है, क्योंकि अवयवको अवयवी मान लेनेमें विरोध उत्पन्न होता है। यदि महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके चौवीसौं अनुयोगव्दार वेदनाखंडके अन्तर्गत होते तो धवलाकार उन सबके संग्रहको उसका एक अवयव क्यों मानते? इससे बिलकुल स्पष्ट है कि वेदनाखण्डके अन्तर्गत उक्त चौवीसों अनुयोगव्दार नहीं हैं।

२. क्या वर्गणा नामका कोई पृथक् अनुयोगव्दार न होनेसे उसके नामपर खंड संज्ञा नही हो सकती?

कम्मपयडिपाहुडके चौवीस अनुयोगव्दारोंमें वर्गणा नामका कोई अनुयोगव्दार नहीं है, यह बिलकुल सत्य है, किन्तु किसी उपभेदके नामसे वर्गणाखण्ड नाम पडना कोई असाधारण घटना तो नहीं कही जा सकती। यथार्थत: अन्य खण्डोमें एक वेदनाखण्डको छोडकर अन्य शेष सब खंडोंके नाम या तो विषयानुसार कल्पित हैं, जैसे जीवट्ठाण, खुद्दांबंध और महाबंध। या किसी अनुयोगव्दारके, उपभेदके नामानुसार है, जैसे बंधसामित्तविचय। उसी प्रकार यदि वर्गणा नामक उपविभाग पदसे उसके महत्त्वके कारण एक विभागका नाम वर्गणाखण्ड रखा गया हो तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। चौवीस अधिकारोंमेंसे जिस अधिकार या उपभेदका प्रधानत्व पाया गया उसीके नामसे तो खंड संज्ञा की गई है, जैसा कि धवलाकारने स्वयं प्रश्न उठाकर कहा है कि कृति, स्पर्श, कर्म और प्रकृतिका भी यहां प्ररुपण होनेपर भी उनकी खण्डग्रन्थ संज्ञा न करके केवल तीन ही खंड कहे जाते है;१ (देखो संतपरुपणा, जिल्द? भूमिका पृ. ६५ टिप्पणी.)। इसी संक्षेप प्ररुपणका प्रमाण देकर वर्गणा को भी खण्डसंज्ञासे च्युत करनेका प्रयत्न किया जाता है। पर संक्षेप और विस्तार आपेक्षिक शब्द हैं, अतएव वर्गणाका प्ररुपण धवलामें संक्षेपसे किया गया है या विस्तारसे यह उसके विस्तारका अन्य अधिकारोंके विस्तारसे मिलान व्दारा ही जाना जा सकता है। अतएव उक्त अधिकारोंके प्ररुपण-विस्तार को देखिये। बंधसामित्तविचयखंड अमरावती प्रतिके पत्र ६६७ पर समाप्त हुआ है। उसके पश्चात् मंगलाचरण व श्रुतावतार आदि विवरण ७१३ पत्र तक चलकर कृतिका प्रारंभ होता है जिसका ७५६ तक ४३ पत्रोंमें, वेदनाका ७५६ से ११०६ तक ३५० पत्रोंमें, स्पर्शका ११०६ से १११४ तक ८ पत्रोंमें, कर्मका १११४ से ११५९ तक ४५ पत्रोंमें प्रकृतिका ११५९ से १२०९ तक ५० पत्रोंमें और बंधन के बंध और बंधनीयका १२०९ से १३३२ तक १२३ पत्रोंमें, प्ररुपण पाया जाता है। इन १२३ पत्रोंमेंसे बंधका प्ररुपण प्रथम १० पत्रोंमें ही समाप्त कर दिया गया है, यह कहकर कि ---

‘ एत्थ उद्देसे खुद्दाबंधस्स एक्कारस-अणियोगद्दाराणं परुवणा कायव्वा’।

इसकेआगे कहा गया है कि ---

'तेण बंधणिज्ज परुवणे कीरमाणे वग्गण-परुवणा णिच्छएण कायव्वा, अण्णहा तेवीस-वग्गणासु इमा चेव वग्गणा बंधपाओग्गा अण्णाओ बंधपाओग्गाओ ण होंति त्ति अवगमाणुव-वत्तीदो। वग्गणाणमणुमग्गणट्ठदाए तत्थ इमाणि अट्ठ अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति' इत्यादि।

अर्थात् बंधनीयके प्ररुपण करनेमें वर्गणा की प्ररुपणा निश्चयत: करना चाहिये, अन्यथा तेईस वर्गणाओंमें ये ही वर्गणाएं बंधके योग्य हैं अन्य वर्गणाएं बंधके योग्य नहीं है, ऐसा ज्ञान नहीं हो सकता। उन वर्गणाओंकी मार्गणाके लिये ये आठ अनुयोगव्दार ज्ञातव्य हैं। इत्यादि।

इस प्रकार पत्र १२१९ से वर्गणाका प्ररुपण प्रारंभ होकर पत्र १३३२ पर समाप्त होता है, जहां कहा गया है कि -

'एवं विस्ससोवचयपरुवणाए समत्ताए गाहिरियवग्गणा समत्ता होदि' ।

इस प्रकार वर्गणाका विस्तार ११३ पत्रोंमें पाया जाता है, जो उपर्युक्त पांच अधिकारोंमेंसे वेदनाको छोडकर शेष सबसे कोई दुगुना व उससे भी अधिक पाया जाता है। पूरा खुद्दाबंधखण्ड ४७५ से ५७६ तक १०१ पत्रोंमें तथा बंधसामित्तविचयखंड ५७६ से ६६७ तक ९१ पत्रोंमें पाया जाता है। किन्तु एक अनुयोगव्दारके अवान्तरके भी अवान्तर भेद वर्गणाका विस्तार इन दोनों खण्डोंसे अधिक है। ऐसी अवस्थामें उसका प्ररुपण संक्षिप्त कहना चाहिये या विस्तृत और उससे उसे खंड संज्ञा प्राप्त करने योग्य प्रधानत्व प्राप्त हो सका या नहीं, यह पाठक विचार करें।

३. वेदनाखण्डके आदिका मंगलाचरण और कौन कौन खंडोंका है?

वेदनाखंडके आदिमें मंगलसूत्र पाये जाते है। उनकी टीकामें धवलाकारने खंडविभाग और उनमें मंगलाचरणकी व्यवस्था संबधी जो सूचना दी है उसको निम्न प्रकार उद्धृत किया जाता है -

'उवरि उच्चमाणेसु तिसु खंडेसु कस्सेदं मंगलं? तिण्णं खंडाणं। कुदो? वग्गणामहाबंधाणमादीए मंगलकरणादो। ण च मंगलेण विणा भूदबलिभडारओ गंथस्स पारभदि, तस्स अणाइरियत्तसंगादो XX कदि-पास-कम्म-पयडि-अणियोगद्दाराणि वि एत्थ परुविदाणि, तेसिं

खंडगंथसण्णमकाऊण तिण्णि चेव खंडाणि त्ति किमट्ठं उच्चदे? ण, तेंसि पहाणत्ताभावादो। तं पि कुदो णव्वदे? संखेवेण परुवणादो'।

वर्गणाखण्डको धवलान्तर्गत स्वीकार न करनेवाले विव्दान इस अवतरणको देकर उसका यह अभिप्राय निकालते है कि - " वीरसेनाचार्य उक्त मंगलसूत्रोंको ऊपर कहे हुए तीनों खण्डों वेदना, बंधसामित्तविचओ और खुद्दाबंधो - का मंगलाचरण बतलाते हुए यह स्पष्ट सूचना की है कि वर्गणाखण्डके आदिमें तथा महाबंधखण्डके आदिमें पृथक् मंगलाचरण किया गया है, मंगलाचरणके बिना भूतबलि आचार्य ग्रन्थका प्रारंभ ही नहीं करते हैं। साथ ही यह भी बतलाया है कि जिन कदि, फास, कम्म, पयडि (बंधण) अणुयोगव्दारोंका भी यहां (एत्थ) - इस वेदनाखण्डमें प्ररुपण किया गया है उन्हें खण्डग्रन्थ संज्ञा न देनेका कारण उनके प्रधानताका अभाव है, जो कि उनके संक्षेप कथनसे जाना जाता है। उक्त फास आदि अनुयोगव्दारोंमेंसे किसीके भी शुरुमें मंगलाचरण नहीं है और इन अनुयोगव्दारोंकी प्ररुपणा वेदनाखंडमें की गई है, तथा इनमेंसे किसीको खंडग्रंथकी संज्ञा नहीं दी गई यह बात ऊपरके शंका समाधानसे स्पष्ट है। "

अब इस कथनपर विचार कीजिये। 'उवरि उच्चमाणेसु तिसु खंडेसु' का अर्थ किया गया है 'ऊपर कहे हुए तीन खंड, अर्थात् वेदना, बंधसामित्त और खुद्दाबंध'। हमें यहांपर यह याद रखना चाहिये कि खुद्दाबंध और बंधसामित्त खंड दूसरे और तीसरे हैं जिनका प्ररुपण हो चुका है और अभी वेदनाखंडके केवल मंगलाचरणका ही विषय चल रहा है, खण्डका विषय आगे कहा जायगा। 'उवरि उच्चमाण' की संस्कृत छाया, जहांतक में समझता हूं 'उपरि उच्यमान' ही हो सकती है, जिसका अर्थ 'ऊपर कहे हुए' कदापि नहीं हो सकता। ' उच्यमान ' का तात्पर्य केवल प्रस्तुत या आगे कहे जानेवालेसेही हो सकता है। फिर भी यदि ' ऊपर कहे हुए ' मानलें तो उससे ऊपरके दो और आगेके एक का समुच्चय कैसे हो सकता है? ऊपर कहे हुए तीन खंड तो जीवट्ठाण आदि तीन हैं, बाकी तीन आगे कहे जानेवाले हैं। इस प्रकार उपर्युक्त वाक्यका जो अर्थ लगाया गया है वह बिलकुल ही असंगत है।

अब आगेका शंका-समाधान देखिये। प्रश्न है यह कैसे जाना कि यह मंगल 'उवरि उच्चमाण' तीनों खण्डोका है? इसका उत्तर दिया जाता है 'क्योंकि वर्गणा और महाबंध के

आदिमें मंगल किया गया है'। यदि यहां जिन खण्डोंमें मंगल किया गया है उनको अलग निर्दिष्ट कर देना आचार्यका अभिप्राय था तो उनमें जीवट्ठाणका भी नाम क्यों नही लिया, क्योंकि तभी तो तीन खण्ड शेष रहते, केवल वर्गणा और महाबंधको अलग कर देनेसे तो चार खन्ड शेष रह गये। फिर आगे कहा गया है कि मंगल किये विना भूतबलि भट्टारक ग्रन्थ प्रारंभ ही नहीं करते, क्योंकि उससे अनाचार्यत्वका प्रसंग आ जाता है। पर उक्त व्यवस्थाके अनुसार तो यहां एक नहीं, दो दो खंड मंगलके विना, केवल प्रारंभ ही नहीं, समाप्त भी किये जा चुके जिनके मंगलाचरणका प्रबंध अब किया जा रहा है, जहां स्वयं टीकाकार कह रहे हैं कि मंगलाचरण आदिम ही किया जाता है, नहीं तो अनाचार्यत्वका दोष आ जाता है। इससे तो धवलाकारका मत स्पष्ट है कि प्रस्तुत ग्रंथरचनामें आदि मंगलका अनिवर्य रुपसे पालन किया गया है। हमने आदिमंगलके अतिरिक्त मध्यमंगल और अन्तमंगलका भी विधान पढा है । किन्तु इन प्रकारोंमेंसे किसी भी प्रकार द्वारा वेदनाखण्डके आदिका मंगल खुद्दाबंधका भी मंगल सिध्द नहीं किया जा सकता। इस प्रकार यह शंका समाधान विषयको समझानेकी अपेक्षा अधिक उलझनमें ही डालने वाला है।

आगेके शंका समाधानकी और भी दुर्दशा की गई है। प्रश्न है कृति, स्पर्श, कर्म और प्रकृति अनुयोगव्दार भी यहां प्ररुपित हैं, उनकी खण्डसंज्ञा न करके केवल तीन ही खण्ड क्यों कहे जाते हैं? यहां स्वभावत: यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यहां कौनसे तीन खण्डोंका अभिप्राय है? यदि यहां भी उन्हीं खुद्दाबंध, बंधसामित्तं और वेदनाका अभिप्राय है तो यह बतालानेकी आवश्यकता है कि प्रस्तुतमें उनकी क्या अपेक्षा है। यदि चौवीस अनुयोगव्दारोंमेसे उत्पत्तिकी यहां अपेक्षा है तो जीवस्थान, वर्गणा और महाबंध भी तो वहींसे उत्पन्न हुए हैं, फिर उन्हें किस विचारसे अलग किया गया? और यदि वेदना, वर्गणा और महाबंधसे ही यहां अभिप्राय है तो एक तो उक्त क्रममें भंग पडता है और दूसरे वर्गणाखण्डके भी इन्हीं अनुयोगव्दारोंमें अन्तर्भावका प्रसंग आता है। जिन अनुयोगद्वारोंकी ओरसे खण्ड संज्ञा प्राप्त न होनेकी शिकायत उठायी गई है उनमें वेदनाका नाम नहीं है । इससे जाना जाता है कि इसी वेदना अनुयोगव्दार परसे वेदनाखंड संज्ञा प्राप्त हुई है। पर यदि 'एत्थ' का तात्पर्य "इस वेदनाखंडमें" ऐसा लिया जाता है तब तो यह भी मानना पडेगा कि वे तीनों खण्ड जिनका उल्लेख किया गया है, वेदनाखण्डके अन्तर्गत हैं। पयडिके आगे बन्धन और क्यों अपनी तरफसे जोडा गया जब कि वह

मूलमें नहीं है, यह भी कुछ समझमें नहीं आता। इस प्रकार प्रश्न भी बडी गडबडी उत्पन्न करनेवाला सिध्द होता है।

अत:वेदनाखंडके आदिमें आये हुए मंगलाचरणको खद्दाबंध और बंधसामित्तका भी सिध्द करना तथा कृति आदि चौवीसों अनुयोगव्दारोंको वेदनाखण्डान्तर्गत बतलाना बडा बेतुका, वे आधार और सारे प्रसंगको गडबडीमें डालनेवाला है। यह सब कल्पना किन भूलोंका परिणाम है और उक्त अवतरणोंका सच्चा रहस्य क्या है यह आगे चलकर बतलाया जायगा ! उससे पूर्व शेष तीन युक्तियोंपर और विचार कर लेना ठीक होगा।

४. वेदनाखंड समाप्तिकी पुष्पिका

धवलामें जहां वेदनाका प्ररुपण समाप्त हुआ है वहां यह वाक्य पाया जाता है ---

एवं वेयण-अप्पाबहुगणिओगद्दारे समत्ते वेयणाखण्ड समत्ता।

इसके आगे कुछ नमस्कार वाक्योंके पश्चात् पुन: लिखा मिलता है ‘वेदनाखंड समाप्तम्’। ये नमस्कार वाक्य और उनकी पुष्पिका तो स्पष्टत: मूलग्रंथके अंग नही हैं, वे लिपिकार व्दारा जोडे गये जान पडते हैं। प्रश्न है प्रथम पुष्पिकाका जो मूल ग्रंथका आवश्यक अंग है। पर उसमें भी ‘वेयणाखण्ड समत्ता’ वाक्य व्याकरण की दृष्टिसे अशुध्द है । वहां या तो ‘वेयणाखंडो समत्तो’ या ‘वेयणाखंडं समत्तं’ वाक्य होना चाहिये था। समालोचकका यह भी अनुमान गलत नही कहा जा सकता कि इस वाक्यमें खण्ड शब्द संभवत: प्रक्षिप्त है, उस शब्दको निकाल देनेसे ‘वेयणा समत्ता’ वाक्य भी ठीक बैठ जाता है। हो सकता है वह लिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त हुआ हो। पर विचारणीय बात यह है कि वह कब और किस लिये प्रक्षिप्त किया गया होगा। इस प्रक्षेपको आधुनिक लिपिकारकृत तो समालोचक भी नहीं कहते । यदि वह प्रक्षिप्त है तो उसी लिपिकारकृत हो सकता है जिसने मूडविद्रीकी ताडपत्रीय प्रति लिखी। हम अन्यत्र बतला चुके हैं कि वह प्रति संभवत: शककी ९ वीं १० वीं शताब्दिकी, अर्थात्, आजसे कोई हजार आठसौ वर्ष पुरानी है। उस प्रक्षिप्त वाक्यसे उस समयके कमसे कम एक व्यक्तिका यह मत तो मिलता ही है कि वह वहां वेदनाखण्डकी समाप्ति समझता था । उससे यह भी ज्ञात हो जाता है

कि उस लेखककी जानकारीमें वहींसे दूसराखंड अर्थात् वर्गणाखण्ड प्रारंभ हो जाता था, नहीं तो वह वहां वेदनाखण्डके समाप्त होनेकी विश्वासपूर्वक दो दो बार सूचना देनेकी धृष्टता न करता। यदि वहां खण्डसमाप्ति होनेका इसके पास कोई आधार न होता तो उसे जबरदस्ती वहां खण्ड शब्द डालनेकी प्रवृत्ति ही क्यों होती? समालोचक लिपिकारकी प्रक्षेपकप्रवृत्ति को दिखलाते हुए कहते हैं कि अनेक अन्य स्थलोंपर भी नानाप्रकारके वाक्य प्रक्षिप्त पाये जाते हैं। यह बात सच है, पर जो उदारहण उन्होंने बतलाया है वहां, और जहांतक मैं अन्य स्थल ऐसे देख पाया हूं वहां सर्वत्र यही पाया जाता है कि लेखकने अधिकारोंकी संधि आदि पाकर अपने गुरु या देवता का नमस्कार या उनकी प्रशस्ति संबंधी वाक्य या पद्य इधर उधर डाले हैं। यह पुराने लेखकोंकी शैली सी रही हैं। पर ऐसा स्थल एक भी देखनेंमें नही आता जहां पर लेखकने अधिकार संबंधी सूचना गलत सलत अपनी ओरसे जोड या घटा दी हो। अतएव चाहे वह खण्ड शब्द मौलिक हो और चाहे किसी लिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त, उससे वेदना खंडके वहां समाप्त होने की एक पुरानी मान्यता तो प्रमाणित होती ही है।

५. इन्द्रनन्दिकी प्रामाणिकता

इन्द्रनन्दि और विबुध श्रीधरने अपने अपने श्रुतावतार कथानकोंमें षट्खंडागमकी रचना और धवलादि टीकाओंके निर्माणका विवरण दिया है। विबुध श्रीधरका कथानक तो बहुत कुछ काल्पनिक है, पर उसमें भी धवलान्तर्गत पाच या छह खण्डोवाली वार्तामें कुछ अविश्वसनीयता नहीं दिखती। इन्द्रनन्दिने प्रकृत विषयसे संबन्ध रखनेवाली जो वार्ता दी है उसको हम प्रथम जिल्दकी भूमिकामें पृ. ३० पर लिख चूके हैं। उसका संक्षेप यह है कि वीरसेनने उपरितन निबन्धनादि अठारह अधिकार लिखे और उन्हें ही सत्कर्मनाम छठवां खंड संक्षेपरुप बनाकर छह खण्डोंकी बहत्तर हजार ग्रन्थप्रमाण, प्राकृत संस्कृत भाषा मिश्रित धवल टीका बनाई । उनके शब्दोंका धवलाकारके उन शब्दोंसे मिलान किजिये जो इसी सम्बन्धके उनके व्दारा कहे गये हैं। निबन्धनादि विभागको यहां भी 'उवरिम ग्रंथ' कहा है और अठारह अनुयोगव्दारोंको संक्षेपमें प्ररुपण करनेकी प्रतिज्ञा की गई है। धरसेन गुरुव्दारा श्रुतोध्दारका जो विवरण इन्द्रनन्दिने दिया है वह प्राय: ज्यों का त्यों धवलाकारके वृत्तान्त से मिलता है। यह बात सच है कि इन्द्रनन्दि व्दारा कही गयी कुछ बातें धवलान्तर्गत वार्तासे किंचित् भेद रखती हैं। किन्तु उनपरसे इन्द्रनन्दिको

सर्वथा अप्रामाणिक नहीं ठहराया जा सकता, विशेषत: खंडविभाग जैसे स्थूल विषयपर। यद्यपि इन्द्रनन्दिका समय निर्णीत नहीं है, पर उनके संबंधमें, पं. नाथूरामजी प्रेमीका मत है कि ये वे ही इन्द्रनन्दि हैं जिनका उल्लेख आचार्य नेमिचन्द्रने गोम्मटसार कर्मकाण्डकी ३९६ वीं गाथामें गुरुरुपसे किया है जिससे वे विक्रमकी ११ वीं शताब्दिके आचार्य ठहरते हैं१। इसमें कोई आश्चर्य भी नहीं है। वीरसेन और धवलाकी रचनाका इतिहास उन्होंने ऐसा दिया है जैसे मानो वे उससे अच्छी तरह निकटतासे सुपरिचित हों। उनके गुरु एलाचार्य कहां रहते थे, वीरसेनने उनके पास सिध्दान्त पढकर कहां कहां जाकर, किस मंदिरमें बैठकर, कौनसा ग्रन्थ सामने रखकर अपनी टीका लिखी यह सब इन्द्रनन्दिने अच्छी तरह बतलाया है जिसमें कोई बनावट और कृत्रिमता दृष्टिगोचर नहीं होती, बल्कि बहुत ही प्रामाणिक इतिहास जंचता है। उन्होंने कदाचित् धवला जयधवलाका सूक्ष्मावलोकन भले ही न किया हो और शायद नोट्स ले रखनेका भी उस समय रिवाज न हो, पर उनकी सूचनाओंपरसे यह बात सिध्द नहीं होती कि धवल जयधवल ग्रन्थ उनके सामने मौजूद ही नहीं थे। उन्होंने ऐसी कोई बात नहीं लिखी जिसकी इन ग्रन्थोंकी वार्तासे इतनी विषमता हो जो पढकर पीछे स्मृतिके सहारे लिखनेवाले व्दारा न की जा सकती हो। इसके अतिरिक्त उनका ग्रंथ अभीतक प्राचीन प्रतियोंपरसे सुसंपादित भी नहीं हुआ है। किसी एकाध प्रतिपरसे कभी छाप दिया गया था, उसीकी कापी हमारे सामने प्रस्तुत है। उन्होंने जो वार्ता किंवदन्तियों व सुने सुनाये आधारपरसे लिखी हो वह भी उन्होंने बहुत सुव्यवस्थित करके भरसक जांच पडतालके पश्चात्, लिखी है और इसी तरह वे बहुतसी ऐसी बातोंपर प्रकाश डाल सके जो धवलादिमें भी व्यवस्थित नहीं पायी जाती, जैसे धवलासे पूर्वकी टीकायें व टीकाकार आदि। वे कैसे प्रामाणिक और निर्भीक तथा अपनी कमजोरियों को स्वीकार करलेनेवाले निष्पक्ष ऐतिहासिक थे यह उनके उस वाक्य परसे सहज ही जाना जा सकता है जहां उन्होंने साफ साफ कह दिया है कि गुणधर और धरसेन गुरुओंकी पूर्वापर आचार्य परम्परा हम नहीं जानते क्योंकि न तो हमें वह बात बतलानेवाला कोई आगम मिला और न कोई मुनिजन२ (संतपरुवणा, जिल्द १, भूमिका पृ. १५.)। कितनी स्पष्टवादिता, साहित्यिक सचाई और नैतिकबल इस अज्ञानकी स्वीकारतामें भरी हुई हैं? क्या इन वाक्योंको लिखनेवालेकी प्रामाणिकतामें सहज ही अविश्वास किया जा सकता है?

६. मूडबिद्रीसे प्रतिलिपी करनेवाले लेखककी प्रामाणिकता

जिस परिस्थितिमें और जिस प्रकारसे धवला और जयधवलाकी प्रतियां मूडबिद्रीसे बाहर निकली हैं उसका हम प्रथम जिल्दकी भूमिकामें विवरण दे आये हैं। उसपरसे उपलब्ध प्रतियोंकी प्रामाणिकतामें नाना प्रकारके सन्देह करना स्वाभाविक है। अतएव जो धवलाके भीतर वर्गणखण्डका होना नहीं मानते उन्हें यह भी कहनेको मिल जाता है कि यदि मूल धवलामें वर्गणाखण्ड रहा भी हो तो उक्त लिपिकारने उसे अपना परिश्रम बचानेके लिये जानबूझकर छोड दिया होगा और अन्तिम प्रशस्ति आदि जोडकर अपने ग्रन्थको पूरा प्रकट कर दिया होगा ताकि उसके पुरस्कारादिमें फरक न पडे। इस कल्पनाकी सचाई झुठाई का पूरा निर्णय तो तभी हो सकता है जब यह ग्रंथ ताडपत्रीय प्रतिसे मिलाया जा सके। पर उसके अभावमें भी हम इसकी संभावनाकी जांच दो प्रकारसे कर सकतें हैं। एक तो उस लेखकके कार्यकी परीक्षा व्दारा और दूसरे विद्यमान धवलाकी रचना की परीक्षा व्दारा। धवलाके संशोधन संपादन संबंधी कार्यमें हमें इस बातका बहुत कुछ परिचय मिला है कि उक्त लेखकने अपना कार्य कहांतक ईमानदारीसे किया है। हमें जो प्रतियां उपलब्ध हुई हैं वे मूडबिद्रीसे आई हुई कानडी प्रतिलिपिकी नागरी प्रतिकी कापी की भी कापियां हैं। वे बहुत कुछ स्खलन-प्रचुर और अनेक प्रकारसे दोषपूर्ण हैं। पर तो भी तीन प्रतियोंके मिलानसे ही पूरा और ठीक पाठ बैठा लेना संभव हो जाता है। इससे ज्ञात होता है कि जो स्खलन उसी प्रथम प्रतिलिपिकार व्दारा हुए हों, पर इस ग्रन्थकी लिपि, भाषा और विषय सम्बन्धी कठिनाइयोंको देखते हुए हमें आश्चर्य इस बातका नहीं है कि वे स्खलन हैं, किन्तु आश्चर्य इस बातका है कि वे बहुत ही थोडे और मामुली हैं, जो किसी भी लेखकके व्दारा अपनी शक्तिभर सावधानी रखनेपर भी हो सकते हैं। जो लेखक एक खण्डके खण्डको छोडकर प्रशस्ति आदि मिलाकर ग्रन्थको पूरा प्रकट करनेका दु:साहस कर सकता हैं, उसके व्दारा शेष लिखाई भी ईमानदारीके साथ किये जानेकी आशा नहीं की जा सकती। पर उक्त लेखकका अभीतक हम जो परिचय धवलापर परिश्रम करके प्राप्त कर सके हैं, उसपरसे हम दृढताके साथ कह सकते हैं कि उसने अपना कार्य भरसक ईमानदारी और परिश्रमसे किया है। उसपरसे उसके

व्दारा एक खण्डको छोडकर ग्रन्थको पूरा प्रकट कर देने जैसे छल-कपट किये जानेकी शंका करनेको हमारा जी बिलकुल नहीं चाहता।

पर यदि ऐसा छल-कपट हुआ है तो धवलाकी जांच व्दारा उसका पता लगाना भी कठिन नहीं होना चाहिये। धवलाकी कुछ टीकाका प्रमाण इन्द्रनन्दिने बहत्तर हजार और ब्रह्महेमने सत्तर हजार बतलाया है। हमारे सन्मुख धवलाकी तीन प्रतियां मौजूद हैं, जिनकी श्लोक संख्याकी हमने पूरी कठोरतासे जांच की। अमरावतीकी प्रतिमें १४६५ पत्र अर्थात् २९३० पृष्ठ हैं और प्रत्येक पृष्ठपर १२ पंक्तियां लिखी गयी हैं। प्रत्येक पंक्तिमें ६२ से ६८ तक अक्षर पाये जाते हैं जिससे औसत ६५ अक्षरोंकी ली जा सकती है। तदनुसार कुल ग्रन्थमें २९३०x१२x६५=२२८५४०० अक्षर पाये जाते हैं जिनकी श्लोकसंख्या ३२ का भाग देकर ७१,४१५ आई। इसे सामान्य लेखेमें चाहे आप सत्तर हजार कहिये, चाहे बहत्तर हजार। कारंजा और आराकी प्रतियोंकी भी उक्त प्रकारसे जांच व्दारा प्राय: यही निष्कर्ष निकलता है। इससे तो अनुमान होता है कि प्रतियोंमेंसे एक खण्डका खण्ड गायब होना असंभवसा है, क्योंकि उस खण्डका प्रमाण और सब खण्डोकों देखते हुए कमसे कम पांच सात हजार तो अवश्य रहा होगा। यह कमी प्रस्तुत प्रतियोंमें दिखाई दिये विना नहीं रह सकती थी।

विषयके तारतम्यकी दृष्टिसे भी धवला अपने प्रस्तुत रुपमें अपूर्ण कहीं नजर नहीं आती। प्रथम तीन खंड पूरे हैं ही। चौथे वेदना खण्डके आदिसे कृति आदि अनुयोगव्दार प्रारम्भ हो जाते हैं। इनमें प्रथम छह कृति, वेदना, फास कम्म, पयडि और बंधन स्वयं भगवान् भूतबलिव्दारा प्ररुपितहै। इनके अन्तमें धवलाकारने कहा है ---

‘भूदबलिभडारएण जेणेदं सुत्तं देसामासियभावेण लिहिदं तेणेदेण सूचिद-सेस-अट्ठारस-अणियोगद्दाराणं किंचि संखेवेण परुवणं कस्सामो (धवला अ. पत्र १३३२).

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि आचार्य भूतबलिकी रचना यहीं तक है । किन्तु उक्त प्रतिज्ञा वाक्यके अनुसार शेष निबन्धनादि अठारह अधिकारोंका वर्णन धवलाकारने स्वयं किया है और अपनी इस रचनाको उन्होंने चूलिका कहा है ---

एत्तो उवरिमगंथो चूलिया णाम ।

इन्हीं अठारह अनुयोगव्दारोंकी वीरसेनव्दारा रचनाका विशद इतिहास इन्द्रनन्दिने अपने श्रुतावतारमें दिया है१

(सं. प. भू. पृ. ३८, ६७.) । इसी चूलिका विभागको उन्होंने छठवां खंड भी कहा है। इस प्रकार चौवीसों अनुयोगव्दारोंके कथनके साथ ग्रन्थ अपने स्वाभाविक रुपसे समाप्त होता है। अब यदि इन्हीं अनुयोगव्दारोंके भीतर वर्गणाखण्ड नहीं माना जाता तो उसके लिये कौनसा विषय और अधिकार शेष रहा और वह कहांसे छूट गया होगा? लेखकव्दारा उसके छोड दिये जानेकी आशंकाको तो इस रचनामें बिलकुल ही गुंजाइश नहीं रही।

वेदनाखंडके आदि अवतरणोंका ठीक अर्थ

वेदनाखंडके आदि मंगलाचरणकी व्यवस्था संबंधी सूचनाका जो अर्थ लगाया जाता है और उससे जो गडबडी उत्पन्न होती है उसका हम उपर परिचय करा चुके हैं। अब हमें यह देखना आवश्यक है कि उक्त भूलोंका क्या कारण है और उन अवतरणोंका ठीक अर्थ क्या है। ‘उवरि उच्चमाणेसु तिसु खंडेसु’ का अर्थ ‘ऊपर कहे हुए तीन खंड’ तो हो ही नहीं सकता। पर ऐसा अर्थ किये जानेके दो कारण मालूम होते हैं। प्रथम तो उवरि से सामान्य ऊपर अर्थात् पूर्वोक्त का अर्थ ले लिया गया है और दूसरे उसकी आवश्यकता भी यों प्रतीत हूई क्योंकि आगे वर्गणा और महाबंधमें अलग मंगल करनेका उल्लेख पाया जाता है। पर खोज और विचारसे देखा जाता है कि ‘उवरि’ शब्दका धवलाकारने पूर्वोक्तके अर्थमें कहीं उपयोग नहीं किया। उन्होंने उस शब्दका प्रयोग सर्वत्र ‘आगे’ के अर्थमें किया है और पुर्वोक्तके लिये ‘पुव्व’ या पूव्वुत्त का। उदाहरणार्थ, संतपरुवणा, पृष्ठ १३० पर उन्होंने कहा है ---

संपहि पुव्वं उत्त-पयडिसमुक्कित्तणा ......एदण्हं पंचण्हमुवरि संपहि पुवुत्त-जहण्णट्ठिदि ...... च पक्खित्ते चूलियाए णव अहियारा भवंति।

अर्थात् पूर्वोक्त समुत्कीर्तनादि पांचोके ऊपर अभी कहे गये जघन्यस्थिति आदि जोड देनेपर चूलिकाके नौ अधिकार हो जाते हैं। यहां ऊपर कहे जा चुक्के लिये ‘पुव्वं उत्त’ व ‘पुव्वुत्त’ शब्द प्रयुक्त हुए हैं और ‘उवरि’ से आगेका तात्पर्य है।

पृ. ७३ पर ‘उवरि’ से बने हुए उवरीदो (उपरित:) अव्ययका प्रयोग देखिये। आचार्य कहते हैं ---

पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी जत्थतत्थाणुपुव्वी चेदि तिविहा आणुपुव्वी। जं मूलादो परिवाडीए उच्चदे सा पुव्वाणुपुव्वी । तिस्से उदाहरणं ‘उसहमजियं च वंदे’ । इच्चेवमादि । जं उवरीदो हेट्ठा परिवाडीए उच्चदि सा पच्छाणुपुव्वी। तिस्से उदाहरणं-एस करेमि य पणमं जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स । सेसाणं च जिणाणं सिवसुहकंखा विलोमेण ।।

यहां यह बतलाया है कि जहां पूर्वसे पश्चात्‌की ओर क्रमसे गणना की जाती है उसे पूर्वानुपूर्वी कहते हैं, जैसे ‘ऋषभ और अजितनाथको नमस्कार’। पर जहां नीचे या पश्चात्‌से ऊपर या पूर्वकी ओर अर्थात् विलोमक्रमसे गणना की जाती है वह पश्चादानुपूर्वी कहलाती है जैसे मैं वर्द्धमान जिनेशको प्रणाम करता हूं और शेष (पार्श्वनाथ, नेमिनाथ आदि) तीर्थकरोंको भी। यहां ‘उवरीदो’ से तात्पर्य ‘आगे’ से है और पीछे की ओरके लिये हेट्ठा (अघः) शब्दका प्रयोग किया गया है।

धवलामें आगे बंधन अनुयोगव्दारकी समाप्तिके पश्चात् कहा गया है ‘एत्तो उवरिमगंथो चूलिया णाम’। अर्थात् यहांसे ग्रन्थका नाम चूलिका है। यहां भी ‘उवरिम’ से तात्पर्य आगे आनेवाले ग्रंथविभागसे है न कि पूर्वोक्त विभागसे।

और भी धवलामें सैकडों जगह ‘उवरि’ शब्दका प्रयोग हमारी दृष्टिमें इस प्रकार आया है “उवरि भण्णमाणचुण्णिसुत्तादो,” ‘उवरिमसुत्तं भणदि’ आदि। इनमें प्रत्येक स्थलपर निर्दिष्ट सूत्र आगे दिया गया पाया जाता है । उवरिका पूर्वोक्तके अर्थमें प्रयोग हमारी दृष्टिमें नहीं आया।

इन उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि उवरिका अर्थ आगे आनेवाले खण्डोसे ही हो सकता है, पूर्वोक्तसे नहीं। और फिर प्रकृतमें तो ‘उच्चमाण’ पद इस अर्थको अच्छी तरह स्पष्ट कर देता है क्योंकि उसका अभिप्राय केवल प्रस्तुत और आगे आनेवाले खण्डोंसे ही हो सकता है। पर यदि आगे कहे जानेवाले तीन खण्डोका यह मंगल है तो इस बातका वर्गणा और महाबंधके आदिमें मंगलाचरणकी सूचनासे कैसे सामञ्जस्य बैठ सकता है? यही एक बिकट स्थल है जिसने उपर्युक्त सारी गडबडी विशेषरुपसे उत्पन्न की है। समस्त प्रकरणपर सब दृष्टियोंसे विचार करनेपर हम इस निष्कर्षपर पहुंचे हैं कि धवलाकी उपलब्ध प्रतियोंमें वहां पाठ की अशुध्दि है। मेरे विचारसे ‘वग्गणामहाबंधाणमादीए मंगल-करणादो’ की जगह ‘वग्गणामहाबंधाणमादीए

मंगलाकरणादो’ पाठ होना चाहिये। दीर्घ ‘आ’ के स्थानपर ऱ्हस्व ‘अ’ की मात्रा की अशुध्दियां तथा अन्य स्वरोंमें भी ऱ्हस्व दीर्घके व्यत्यय इन प्रतियोंमें भरे पडे हैं। हमें अपने संशोधनमें इस प्रकारके सुधार सैकडो जगह करना पडे हैं। यथार्थतः प्राचीन कन्नड लिपिमें ऱ्हस्व और दीर्घ स्वरोंमें बहुधा विवेक नहीं किया जाता था१ (डॉ. उपाध्ये परमात्मप्रकाश, भूमिका, पृ. ८३.) । हमारे अनुमान किये हुए सुधारके साथ पढनेसे पूर्वोक्त समस्त प्रकरण व शंका-समाधानक्रम ठीक बैठ जाता है। उससे उक्त दो अवतरणोंके बीचमें आये हुए उन शंका समाधानोंका अर्थ भी सुल-झ जाता है जिनका पूर्वकथित अर्थसे बिलकुल ही सामञ्जस्य नहीं बैठता बल्कि विरोध उत्पन्न होता है। वह पूरा प्रकरण इस प्रकार है ---

उवरि उच्चमाणेसु तिसु खंडेसु कस्सेदं मंगलं? तिण्णं खंडाणं। कुदो? वग्गणामहाबंधनामादी मंगलाकरणादो। ण च मंगलेण विणा भूतबलिभडारओ गंथस्स पारभदि, तस्स अणाइरियत्तपसंगादो। कधं वेयणाए आदीए उत्तं मंगलं सेस-दो-खंडाणं होदि? ण, कदीए आदिम्हि उत्तस्स एदस्सेव मंगलस्स सेसतेवीस अणियोगद्दारेसु पउत्तिदंसणादो। महाकम्मापयडि-पाहुडत्तणेण चउवीसण्हमणियोगद्दाराणं भेदाभावादो एगत्तं, तदो एगस्स एयं मंगलं तत्थ ण विरुज्झादे। ण च एदेसिं तिण्हं खंडाणमेयत्तमेगखंडत्तपसंगादो त्ति, ण एस दोसो, महाकम्मपयडिपाहुडत्तणेण एदेसिं पि एगत्तदंसणादो। कदि-पास-कम्म-पयडि-अणियोगद्दाराणि वि एत्थ परुविदाणि, तेसिं खंडग्गंथसण्णकाऊण तिण्णि चेव खंडाणि त्ति किमट्ठं उच्चदे? ण, तेसिं पहाणत्ताभावादो। तं पि कुदो णव्वदे? संखेवेण परुवणादो।

इसका अनुवाद इस प्रकार होगा ---

शंका --- आगे कहे जानेवाले तीन खण्डों (वेदना, वर्गणा और महाबंध) में से किस खंडका मंगलाचरण है?

समाधान --- तीनों खण्डोंका।

शंका --- कैसे जाना?

समाधान --- वर्गणाखंड और महाबंध खण्डके आदिमें मंगल न किये जानेसे। मंगल किये विना तो भूतबलि भट्टारक ग्रंथका प्रारंभ ही नहीं करते क्योंकि इससे अनाचार्यत्वका प्रसंग आ जाता है।

शंका --- वेदनाके आदिमें कहा गया मंगल शेष दो खंडोंका भी कैसे हो जाता है?

समाधान --- क्योंकि कृतिके आदिमें किये गये इस मंगलकी शेष तेवीस अनुयोगव्दारोंमें भी प्रवृत्ति देखी जाती है।

शंका --- महाकर्मप्रकृति पाहुडत्वकी अपेक्षासे चौवीसों अनुयोगव्दारोंमें भेद न होनेसे उनमें एकत्व है, इसलिये एकका यह मंगल शेष तेवीसोंमें विरोधको प्राप्त नहीं होता। परंन्तु इन तीनों खण्डोंमें तो एकत्व है नहीं, क्योंकि तीनोंमें एकत्व मान लेनेपर तीनोंके एक खंडत्वका प्रसंग आ जाता है?

समाधान --- यह कोई दोष नहीं, क्योंकि-महाकर्मप्रकृतिपाहुडत्वकी अपेक्षासे इनमें भी एकत्व देखा जाता है।

शंका --- कृति, स्पर्श, कर्म और प्रकृति अनुयोगव्दार भी यहां (ग्रन्थके इस भागमें) प्ररुपित किये गये हैं, उनकी भी खंड ग्रन्थ संज्ञा न करके तीन ही खंड क्यों कहे जाते हैं?

समाधान --- क्योंकि इनमें प्रधानताका अभाव है।

शंका --- यह कैसे जाना?

समाधान --- उनका संक्षेपमें प्ररुपण किया गया है इससे जाना।

इस परसे यह बात स्पष्ट समझमें आ जाती है कि उक्त मंगलाचरणका सम्बन्ध बंधसामित्त और खुद्दाबंध खण्डोसें बैठाना बिलकुल निर्मूल, अस्वाभाविक, अनावश्यक और धवलाकार के मतसे सर्वथा विरुध्द है। हम यह भी जान जाते हैं कि वर्गणाखंड और महाबंधके आदिमें कोई मंगलाचरण नहीं है, इसी मंगलाचरणका अधिकार उनपर चालू रहेगा। और हमें यह भी सूचना मिल जाती है कि उक्त मंगलके अधिकारान्तर्गत तीनों खंड अर्थात् वेदना, वर्गणा और महाबंध प्रस्तुत अनुयोगव्दारोंसे बाहर नहीं है। वे किन अनुयोगव्दारोंके भीतर गर्भित हैं यह भी संकेत्त धवलाकार यहां स्पष्ट दे रहे हैं। खण्ड संज्ञा प्राप्त न होनेकी शिकायत किन अनुयोगव्दारोंकी ओरसे उठाई गई? कदि, पास, कम्म और पयडि अनुयोगव्दारोंकी ओरसे। वेदणा-अनुयोगव्दारका यहां उल्लेख नहीं है क्योंकि उसे खंड संज्ञा प्राप्त है। धवलाकारने बंधन अनुयोगव्दारका उल्लेख यहां जान बुझकर छोडा हैं क्योंकि बंधनके ही एक अवान्तर भेद वर्गणासे वर्गणाखंड संज्ञा प्राप्त हुई है और उसकेएक दूसरे उपभेद बंधविधानपर महाबंधकी एक भव्य इमारत खडी है। जीवट्टहआण, खुद्दाबंध और बंधसामित्तविचय भी इसीके ही भेद प्रभेदोंके

सुफल हैं । इसलिये उन सबसे भाग्यवान पांच पांच यशस्वी संतानके जनयिता बंधनको खंड संज्ञा प्राप्त न होनेकी कोई शिकायत नहीं थी। शेष अठारह अनुयोगव्दारोंका उल्लेख न करनेका कारण यह है कि भूतबलि भट्टारकने उनका प्ररुपण ही नहीं किया। भूतबलिकी रचना तो बंधन अनुयोव्दारके साथ ही, महाबंध पूर्ण होनेपर, समाप्त हो जाती है जैसा हम ऊपर बतला चुकेहैं।

इसी अवतरणसे ऊपर धवलाकारने जो कुछ कहा है उससे प्रकृत विषयपर और भी बहुत विशद प्रकाश पडता है। वह प्रकरण इस प्रकार है ---

तत्थेदं किं णिबध्दमाहो अणिबध्दमिदि? ण ताव णिबध्दमंगलमिदं महाकम्मपयडीपाहुडस्स कदियादि-चउवीसअणियोगावयवस्य आदीए गोदमसामिणा परुविदस्स भूतवलिभडारएण वेयणाखंडस्स मंगलट्ठं तत्तो आणेदूण ठविदस्स णिबध्दत्तविरोहादो। ण च वेयणाखण्ड महाकम्मपयडिपाहुडं अवयवस्स अवयवित्तविरोहादो। ण च भूदबली गोदमो विगलसुदधारयस्स धरसेणाइरियसीसस्स भूदबलिस्स सयलसुदधारवड्ढमाणंतेवासिगोदमत्तविरोहादो। ण चाण्णो पयारो णिबध्दमंगलत्तस्स हेदुभूदो अत्थि। तम्हा अणिबध्दमंगलमिदं। अधवा होदु णिबध्दमंगलं। कथं वेयणाखंडा-दिखण्डगयस्स महाकम्मपयडिपाहुडत्तं? ण, कदिया (दि) चउवीस-अणियोगद्दारेहिंतो एयंतेण पुधभूदमहाकम्मपयडि-पाहुडाभावादो। एदेसिमणियोगद्दाराणं कम्मपयडिपाहुडत्ते संते पाहुड-बहुत्तं पसज्जदे? ण एस दोसो, कथंचि इच्छिज्ज-माणत्तादो। कधं वेयणाए महापरिमाणाए उवसंहारस्स इमस्स वेयणाखंडस्स वेयणा-भावो? ण, अवयवेहिंतो एयंतेण पुधभूदस्स अवयविस्स अणुवलंभादो। ण च वेयणाए बहुत्तमणिट्ठमिच्छिज्जमाणत्तादो। कधं भूदवलिस्स गोदमत्तं? किं तस्स गोदमत्तेण? कधमण्णहा मंगलस्स णिबध्दत्तं? ण, भूदबलिस्स खण्ड-गंथं पडि- कत्तारत्ताभावादो। ण च अण्णेण कय-गंथाहियाराणं एगदेसस्स पुव्विहा (पुविल्ल) सद्दत्थ-संदब्भस्स परुवओ कत्तारो होदि, अइप्पसंगादो। अधवा भूदबली गोदमो चेव एगाहिप्पायत्तादो। तदो सिध्दं णिबध्दमंगलत्तं पि। उवरि उच्चमाणंसु तिसु खंडेसु. . . . . इत्यादि।

१. शंका --- इनमेंसे, अर्थात् निबध्द और अनिबध्द मंगलोंमेंसे, यह मंगल निबध्द है या अनिबध्द?

समाधान --- यह निबद्ध मंगल नहीं है, क्योंकि कृति आदि चौवीस अवयवोंवाले महाकर्मप्रकृतिपाहुडके आदिमें गौतमस्वामीव्दारा इसका प्ररूपण किया गया है। भूतबलि स्वामीने उसे वहांसे लाकर वेदनाखंडके आदिमें मंगलकेनिमित्त रख दिया है। इसलिये उसमें निबध्दत्वका

विरोध है। वेदनाखंड कुछ महाकर्म्मप्रकृतिपाहुड तो है नहीं, क्योंकि अवयवको ही अवयवी माननेंमें विरोध आता है। और भूतबलि गौतमस्वामी हो नहीं सकते, क्योंकि विकल श्रुतके धारक और धरसेनाचार्यके शिष्य ऐसे भूतबलिमें सकलश्रुतके धारक और वर्धमानस्वामीके शिष्य ऐसे गौतमपनेका विरोध है। और कोई प्रकार निबध्द मंगलपनेका हेतु होता नहीं है, इसलिये यह मंगल अनिबध्द मंगल है। अथवा, यह निबध्द मंगल भी हो सकता है।

२. शंका --- वेदनाखंड आदि खंडोंमे समाविष्ट (ग्रंथ) को महाकर्मप्रकृतिपाहुडपना कैसे प्राप्त हो सकता है?

समाधान --- क्योंकि कृति आदि चौवीस अनुयोगव्दारों से सर्वथा पृथक्भूत महाकर्म-प्रकृतिपाहुडकी कोई सत्ता नहीं है।

३. शंका --- इस अनुयोगव्दारोंमें कर्मप्रकृतिपाहुडत्व मान लेनेसे तो बहुतसे पाहुड माननेका प्रसंग आ जाता है?

समाधान --- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह बात कथंचित् अर्थात् एक दृष्टिसे अभीष्ट है।

४. शंका --- महापरिमाणवाली वेदनाके उपसंहाररुप इस वेदनाखंडको वेदना अनुयोगव्दार कैसे माना जाय?

समाधान --- ऐसा नहीं है, क्योंकि अवयवोंसे एकान्ततः पृथक्भूत अवयवी तो पाया नहीं जाता। और इससे यदि एकसे अधिक वेदना माननेका प्रसंग आता है तो वेदनाके बहुत्वसे कोई अनिष्ट भी नहीं क्योंकि वह बात इष्ट ही है।

५. शंका --- भूतबलिको गौतम कैसे मान लिया जाय?

समाधान --- भूतबलिको गौतम माननेका प्रयोजन ही क्या है?

६. शंका --- यदि भूतबलिको गौतम न माना जाय तो मंगलको निबध्दपना कैसे प्राप्त हो सकता है?

समाधान --- क्योंकि भूतबलिके खण्डग्रन्थके प्रति कर्तापनेका अभाव है। कुछ दूसरे के व्दारा रचे गये ग्रन्थांधिकारोंमेंसे एक देशका पूर्व प्रकारसे ही शब्दार्थ और संदर्भका प्ररुपण करनेवाला ग्रंथकर्ता नहीं हो सकता, क्योंकि इससे तो अतिप्रसंग दोष अर्थात् एक ग्रंथकें कर्ता

होनेका प्रसंग आ जायगा। अथवा, दोनोंका एक ही अभिप्राय होनेसे भूतबलि गौतम ही है। इस प्रकार यहां निबध्द मंगलत्व भी सिध्द हो जाता है।

वेदना और वर्गणा खण्डोंकी सीमाओंका निर्णय

यहांपर प्रथम शंका समाधानमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि वेदनाखंडके अन्तर्गत पूरा महाकम्मपयडिपाहुडका विषय नहीं है --- वह उस पाहुडका एक अवयव मात्र है, अर्थात् उसमें उक्त पाहुडके चौवीसों अनुयोगव्दारोंका अन्तर्भाव नहीं किया जा सकता। महाकर्मप्रकृतिपाहुड अवयवी है और वेदनाखण्ड उसका एक अवयव।

दूसरे शंका समाधानसे यह सूचना मिलती है कृति आदि चौवीस अनुयोगव्दारोंमें अकेला वेदनाखण्ड नहीं फैला है, वेदना आदि खंड हैं अर्थात् वर्गणा और महाबंधका भी अन्तर्भाव वहीं है। तीसरे शंका समाधानमें कर्मप्रकृतिपाहुड के कृति आदि अवयवोंमें भी एक दृष्टिसे पाहुडपना स्थापित करके चौथेमें स्पष्ट निर्देश किया है कि वेदनाखंडमें गौतमस्वामीकृत बडे विस्तारवाले वेदना अधिकारका ही उपसंहार अर्थात् संक्षेप है। यह वेदना धवलाकी अ. प्रतिमें पृ. ७५६ पर प्रारम्भ होती है जहां कहा गया है ---

कम्मट्ठजणियवेयण-उवहि-समुत्तिण्णए जिणे णमिउं ।
वेयणमहाहियारं विविहहियारं परुवेमो ।।

और वह उक्त प्रतिके ११०६ वें पत्रपर समाप्त होती है जहां लिखा मिलता है ---

एवं वेयण-अप्पाबहुगाणिआगेद्दारे समत्ते वेयणाखंड समत्ता ।

इस प्रकार इस पुष्पिकावाक्यमें अशुध्दि होते हुए भी वहां वेदनाखंडकी समाप्तिमें कोई शंका नही रह जाती।

पांचवे और छठवें शंका समाधानमें भूतबलि और गौतममें ग्रन्थकर्ता व अभिप्रायकी अपेक्षा एकत्व स्थापित किया गया है जो सहज ही समझमें आ जाता है। इस प्रकार उक्त मंगल निबध्द भी सिध्द करके बना दिया गया है।

इस प्रकार उक्त शंका समाधानसे वेदनाखंडकी दोनों सीमायें निश्चित हो जाती हैं। कृति तो वेदनाखण्डके अन्तर्गत है ही क्योंकि उक्त शंका समाधानकी सूचनाके अतिरिक्त मंगलाचरणके साथ ही वेदनाखण्डका प्रारंभ माना ही गया है।

वेदनाखंडके विस्तारका एक और प्रमाण उपलब्ध है। टिकाकारने उसका परिमाण सोलह हजार पद बतलाया है । यथा, 'खंडगंथ पडुच्च वेयणाए सोलसपदसहस्सणि'। यह पदसंख्या भूतबलिकृत सूत्र-ग्रन्थकी अपेक्षासे ही होना चाहिये। अतएव जबतक यह न ज्ञात हो जावे कि पदसे यहां धवलाकारका क्या तात्पर्य है। तथा वेदनादी खंडोंके सूत्र अलग करके उनपर वह माप न लगाया जावे तबतक इस सूचनाका हम अपनी जांचमें विशेष उपयोग नहीं कर सकते। तो भी चूंकि टिकाकारने एक अन्य खण्डकी भी इस प्रकार पद संख्या दी है और उस खण्डकी सीमादिके विषयमें कोई विवाद नहीं है इसलिये हमें उनकी तुलनासे कुछ आपेक्षिक ज्ञान अवश्य हो जायगा। धवलाकारने जीवट्ठाण खण्डकी पद संख्या अठारह हजार बतलाई है - 'पदं पडुच्च अट्ठारहपदसहस्सं' (संत प. पृ. ६०) इससे यह ज्ञात हुआ कि वेदनाखण्डका परिमाण जीवट्ठाणसे नवमांश कम है। जीवट्ठाण के ४७५ पत्रोंका नवमांश लगभग ५३ होता है, अत: साधारणतया वेदनाखण्डकी पत्र संख्या ४७५-५३=४२२ के लगभग होना चाहिये। ऊपर निर्धारित सीमाके अनुसार वेदनाकी पत्र संख्या प्रत्यक्षमें ६६७ से ११०६ तक अर्थात् ४३८ है जो आपेक्षिक अनुमानके बहुत नजदीक पडती है। समस्त चौवीस अनुयोगव्दारोंको वेदनाका भीतर मान लेनेसे तो जीवट्ठाणकी अपेक्षा वेदनाखंड धवला के तिगुनेसे भी अधिक बडा हो जाता है।

जब वेदनाखण्डका उपसंहार वेदनानुयोगव्दारके साथ हो गया तब प्रश्न उठता है कि उसके आगेके फास आदि अनुयोगव्दार किस खण्डके अंग रहे? ऊपर वेदनादि तीन खण्डोंके उल्लेखोंके विवेचन से यह स्पष्ट ही है कि वर्गणा निर्णय वेदनाके पश्चात् वर्गणा और उसके पश्चात् महाबंधकी रचना है । महाबंधकी सीमा निश्चितरुपसे निर्दिष्ट है क्योंकि धवलामें स्पष्ट कर दिया गया है कि बन्धन अनुयोगव्दारके चौथे प्रभेद बन्धविधानके चार प्रकार प्रकृति, स्थिती, अनुभाग और प्रदेशबंधका विधान भूतबलि भट्टारकने महाबंधमें विस्तारसे लिखा है, इसलिये वह धवलाके भीतर नहीं लिखा गया। अत: यहींतक वर्गणाखण्डकी सीमा समझना चाहिये। वहांसे

आगेके निबन्धनादि अठारह अधिकार टीकाकी सूचनानुसार चूलिका रुप हैं। वे टीकाकार कृत हैं भूतबलिकी रचना नहीं है।

उक्त खंड विभागको सर्वथा प्रामाणिक सिध्द करनेके लिये अब केवल उस प्रकारके किसी प्राचीन विश्वसनीय स्पष्ट उल्लेखमात्रकी अपेक्षा और रह जाती है। सौभाग्यसे ऐसा एक उल्लेख भी हमें प्राप्त हो गया है। मुडविद्रकी पं. लोकनाथजी शास्त्रीने वीरवाणीविलास जैन सिध्दांतभवनकी प्रथम वार्षिक रिपार्ट (१९३५) में मूडविद्रीको ताडपत्रीय प्रतिपरसे महाधवल (महाबंध) का कुछ परिचय अवतरणों सहित दिया है। इससे प्रथम बात तो यह जानी जाती है कि पंडितजीको उस प्रतिमें कोई मंगलाचरण देखनेको नहीं मिला। वे रिपोर्टमें लिखते है "इसमें मंगलाचरण श्लोक, ग्रन्थकी प्रशस्ति वगैरह कुछ भी नहीं है।" पं. लोकनाथजी की यह रिपोर्ट महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पंडितजीने ग्रन्थको केवल ऊपर नीचे ही नहीं देखा - उन्होंने कोई चार वर्षतक परिश्रम करके पूरे महाधवल ग्रंथकी नागरी प्रतिलिपी तैयार की है जैसा कि हम प्रथम जिल्दकी भूमिकामें बतला आये हैं। अतएव उस ग्रंथका एक एक शब्द उनकी दृष्टि और कलमसे गुजर चुका है। उनके मतसे पूर्वोक्त 'मंगलकरणादो' पदमें हमारे 'मंगलाकरणादो' रुप सुधार की पुष्टी होती है ---

दूसरी बात जो महाधवलके अवतरणोंमें हमें मिलती है वह खंडविभागसे संबंध रखती है। महाबंधपर कोई पंचिका भी उस प्रतिमें ग्रथित है जैसा कि अवतरणकी प्रथम पंक्तिमे ज्ञात होता है ---

'वोच्छामि संतकम्मे पंचियरुवेण विवरणं सुमहत्थं'

इसी पंचिकाकारने आगे चलकर कहा है ---

'महाकम्मपयडिपाहुडस्स कदि-वेदणाओ (दि) चौव्वीसमणियोगद्दारेसु तत्थ कदिवेदणा त्ति जाणि अणियोग-द्दाराणि वेदणाखंडम्हि, पुणो पास (-कम्म-पयडि-बंधणाणि) चत्तारि अणियोगद्दारेसु तत्थ बंध बंधणिज्ज-णमणियोगेहि सह वग्गणाखंडम्हि, पुणो बंधविधाणमणियोगो खुद्दाबंधम्मि सप्पवचेण परुविदाणि। पुणो तेहिंतो सेसट्ठारसणियोगद्दाराणि सत्तकम्मे सव्वाणि परुविदाणि। तो वि तस्सइगंभीरत्तादो अत्थविसमपदाणमत्थे थोरुद्धयेण पंचियसरुवेण भणिस्सामो'१ (यह अवतरण सं. प. जिल्द १ की भूमिका पृ. ६८ पर दिया जा चुका है।

'पर वहां भूलसे पुणो तेहिंतो' आदि वाक्य छूट गया है। अत: प्रकृतोपयोगी उस अवतरणको यहां फिर पूरा दे दिया है।)

इस अवतरणमें शब्दोंमें अशुध्दियां है। कोष्टकके भीतरके सुधार या जोडे हुए पाठ मेरे हैं। पर उसपरसे तथा इससे आगे जो कुछ कहा गया है उससे यह स्पष्ट जान पडा कि यहां निबंधनादि अठारह अधिकारोंकी पंजिका दी गई है। उन अठारह अधिकारोंका नाम 'सत्तकम्म' था, जिससे इन्द्रनन्दिके सत्कर्मसंबन्धी उल्लेखकी पूरी पुष्टि होती है। प्राप्त अवतरण परसे महाधवलकी प्रति उसके विषय आदिके संबंधमें अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं, और प्रतिकी परीक्षाकी बडी अभिलाषा उत्पन्न होती है, किन्तु उस सबका नियंत्रण करके प्रकृत विषयपर आनेसे उक्त अवतरणमें प्रस्तुतोपयोगी यह बात स्पष्ट रुपसे मालूम हो जाती है, कि कृति और वेदना अनुयोगव्दार वेदनाखंडके तथा फास, कम्म, पयडि और बंधनके बंध और बंधनीय भेद वर्गणाखंडके भीतर हैं। इससे हमारे विषयका निर्विवादरुपसे निर्णय हो जाता है।

प्रथम जिल्दकी भुमिकामें ठीक इसी प्रकार खंडविभागका परिचय कराया जा चुका है उस परिचयकी ओर पाठकोंका ध्यान पुन: आकर्षित किया जाता है।

४. णमोकार मंत्रकेआदिकर्ता

१

जो ख्याति और प्रचार हिन्दुओंमे गायत्री मंन्त्रका है तथा बौध्दोंमें त्रिसरण मन्त्रका था, वही जैनियोंमें णमोकार मन्त्रका है। धार्मिक तथा सामाजिक सभी कृत्यों व विधानोंके आरम्भमें जैनी इस मन्त्रका उच्चारण करते हैं। यही उनका दैनिक जपमन्त्र है। इसकी प्रख्यातिका एक पद्य निम्न प्रकार है, जो नित्य पूजनविधानमें उच्चारण किया जाता है ---

एसो पंच-णमोयारो सव्वपापप्पणासणो । मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होई मंगल ।।

अर्थात् यह पंच नमस्कार मन्त्र सब पापों का नाश करनेवाला है और सब मंगलोंमें प्रथम (श्रेष्ठ) मंगल है।

इस मन्त्रका प्रचार जैनियोंके तीनों सम्प्रदायों-दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानक उल्लेख मिलता है। किंतु अभी तक यह निश्चय नहीं हुआ कि इस मन्त्रके आदिकर्ता कौन है। यथार्थत:

यह प्रश्न ही अभी तक किसी ने नहीं उठाया और इस कारण इस मन्त्रको अनादिनिधन जैसा पद प्राप्त हो गया है।

किन्तु षट्खंडागम और उसकी टीका धवलाके अवलोकनसे इस णमोकार मन्त्रके कर्तृत्वके सम्बन्धमें कुछ प्रकाश पडता हैं, और इसीका यहां परिचय कराया जाता है।

षट्खण्डागमका प्रथम खण्ड जीवट्ठाण है और इस खंडके प्रारम्भमें यही सुप्रसिध्द मन्त्र पाया जाता है। टीकाकार वीरसेनाचार्यके अनुसार यही उक्त ग्रंथका सूत्रकारकृत मंगलाचरण है। वे लिखते हैं कि ---

मंगल-णिमित्त-हेऊ-परिमाणं णाम तह य कत्तारं ।
वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमाइरियो ।।

इदि णायमाइरिय- परंपरागयं मणेणावहारिय पुव्वाइरियायाराणुसरणं तिरयणहेउ त्ति पुप्फदंताइरियो मंगलादीणं छण्णं सकारणाणं परुवणट्ठं सुत्तमाह ---

णमो अरिहंताणं, णमो सिध्दाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।। (सं. प. १, पृ. ७)

अर्थात् 'मंगल, निमित्त, हेतु परिमाण, नाम और कर्ता इन छहों का प्ररुपण करके पश्चात् आचार्यको शास्त्रका व्याख्यान करना चाहिये।' इस आचार्य परंपरागत न्याय को मनमें धारण करके पुष्पदन्ताचार्य मंगलादि छहोंके सकारण प्ररुपणके लिये सूत्र कहते हैं, 'णमो अरिहंताणं' आदि।

इसके आगे धवलाकारने इसी मंगलसूत्रको 'तालपलंब' सूत्रके समान देशामर्षक बतलाकर पूर्वोक्त मंगल, निमित्त आदि छहों का प्ररुपक सिध्द किया है। तत्पश्चात् मंगल शब्दकी व्युत्पत्ति व अनेक दृष्टियोंसे भेद प्रभेद बतलाते हुए मंगलके दो भेद इसप्रकार किये है ---

तच्च मंगलं दुविहं णिबध्दमणिबध्दमिदि। तत्थ णिबध्दं णाम जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबध्द-देवदा-णमोक्कारो तं णिबध्द-मंगलं। जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कयदेवदाणमोक्कारो तमणिबध्द-मंगलं। इदं पुण जीवट्ठाणं णिबध्द मंगलं, यत्तो 'इमेंसि चोद्दसण्ह जीवसमाणं' इदि

एदस्स सुत्तसादीए णिबध्द-'णमो अरिहंताणं इच्चादिदेवदा-णमोक्कारदंसणादो। (सं. पं. १, पृ. ४१)

अर्थात् मंगल दो प्रकारका है, निबध्द और अनिबध्द। सूत्रके आदिमें सूत्रकर्त्ता व्दारा जो देवता-नमस्कार निबध्द किया जाय वह निबध्द मंगल है और जो सूत्रके आदिमें सूत्रकर्त्ता व्दारा देवताको नमस्कार किया जाता है (किन्तु वह नमस्कार लिपिबध्द नहीं किया जाता) वह अनिबध्द-मंगल है। यह जीवट्ठाणं निबध्द मंगल है क्योंकि इसके 'इमेसिं चोद्दसण्हं' आदिसूत्रके पूर्व 'णमो अरिहंताणं' इत्यादि देवतानमस्कार पाया जाता है।

इससे यह सिध्द हुआ कि जीवट्ठाणके आदिमें जो यह णमोकार मंत्र पाया जाता है वह सूत्रकार पुष्पदन्त आचार्य व्दारा ही वहां रखा गया है और इससे शास्त्रको निबध्द-मंगल संज्ञा प्राप्त हो जाती है। किन्तु इससे यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता कि यह मंगलसूत्र स्वयं पुष्पदन्ताचार्यने रचकर यहां निबध्द किया है, या कहीं अन्यत्र से लेकर यहां रख दिया है। पर अन्यत्र धवलाकार ने इसका भी निर्णय किया है।

वेदनाखण्डके आदिमे 'णमो जिणाणं' आदि मंगलसूत्र पाये जाते हैं, जिनकी टीका करते हुए धवलाकारने उनके निबध्द-अनिबध्द स्वरुप का विवेचन किया है। वे लिखते है ---

तत्थेदं किं णिबध्दमाहो अणिबध्दमिदि? ण ताव णिबध्द-मंगलमिदं, महाकम्मपयडि-पाहुडस्सकदियादि-चउवीस-अणियोगावयवस्स आदीए गोदमसामिणा परुविदस्स भूदबलिभडारएण वेयणाखंडस्स आदीए मंगलट्ठं तत्तो आणेदूण ठविदस्स णिबध्दत्त-विरोहादो। ण च वेयणाखण्ड महाकम्मपयडिपाहुडं अवयवस्स अवयवित्तविरोहादो। ण च भूदबली गोदमो, विगलसुदधारयस्स धरसेणाइरियसीसस्स भूदबलिस्स सयलसुदधारयवड्ढमाणंतेवासि-गोदमत्तविरोहादो। ण चाण्णो पयारो णिबध्दमंगलत्तस्स हेदुभूदो अत्थि।

अर्थात् यह मंगल (णमो जिणाणं, आदि) निबध्द है या अनिबध्द? यह निबध्द-मंगल तो नहीं है क्योंकि महाकर्म प्रकृतिपाहुडके कृति आदि चौविस अनुयोगव्दारोंके आदिमें गौतमस्वामीने इस मंगलका प्ररुपण किया है और भूतबलि भट्टारकने उसे वहांसे उठाकर मंगलार्थ यहां वेदनाखण्डके आदिमें रख दिया है, इससे इसके निबध्द-मंगल होनेमें विरोध आता

है। न तो वेदनाखंड महाकर्मप्रकृतिपाहुड है, क्योंकि अवयवको अवयवी माननेमें विरोध आता है। और न भूतबलि ही गौतम हैं क्योंकि विकलश्रुतके धारक और धरसेनाचार्यके शिष्य भूतबलिको सकलश्रुतके धारक और वर्धमानस्वामीके शिष्य गौतम माननेंमें विरोध उत्पन्न होता है। और कोई प्रकार निबध्द मंगलत्वका हेतु हो नहीं सकता।

आगे टीकाकारने इस मंगलको निबध्दमंगल भी सिध्द करने का प्रयत्न किया है, पर इसके लिये उन्हें प्रस्तुत ग्रन्थका महाकर्मप्रकृतिपाहुडसे तथा भूतबलिस्वामीका गौतमस्वामीसे बडी खींचातानी व्दारा एकत्व स्थापित करना पडा है। इससे धवलाकारका यह मत बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि दूसरेके बनाए हुए मंगलको अपने ग्रन्थमें जोड देनेसे वह शास्त्र निबध्द-मंगल नहीं कहला सकता, निबध्द-मंगलत्वकी प्राप्तिके लिये मंगल ग्रन्थकारकी ही मौलिक रचना होना चाहिए। अतएव जब कि धवलाकार जीवट्ठाणको णमोकार मन्त्ररुप मंगलके होनेसे निबध्द-मंगल मानते हैं तब वे स्पष्टत: उस मंगलसूत्रको सूत्रकार पुष्पदन्तकी ही मौलिक रचना स्वीकार करते हैं, वे यह नहीं मानते कि उस मंगलको उन्होंने अन्यत्र कहीं से लिया है। इससे धवलाकार आचार्य वीरसेनका यह मत सिध्द हुआ कि इस सुप्रसिध्द णमोकार मंत्रके आदिकर्ता प्रात:स्मरणीय आचार्य पुष्पदन्त ही हैं।

२

णमोकार मंत्रके संबन्धमें श्वेताम्बर सम्प्रदायकी क्या मान्यता है और उसका पूर्वोक्त मतसे कहां तक सामञ्जस्य या वैषम्य है, इसपर भी यहां कुछ विचार किया जाता है। श्वेताम्बर आगमके अन्तर्गत छह छेदसूत्रोंमेंसे व्दितीय सूत्र 'महानिशीथ' नामका है। इस सूत्रमें णमोकार मन्त्रके विषयमें निम्न वार्ता पायी जाती है ---

एयं तु जं पंचमंगलमहासुयक्खंधस्स वक्खाणं तं महया पबंधेणं अनंतगमपज्जवेहिं सुत्तस्स य पियभूयाहिं णिज्जुत्ति-भास-चुन्नीहिं जेहव अनंत-नाण -दंसणधरेहि तित्थयरेहिं वक्खाणियं तहेव समासओ वक्खाणिज्जं तं आसि। अहऽन्नया कालपरिहाणिदोसेणं ताओ णिज्जुत्ति-भास-चुन्नीओ वुच्छिन्नाओ। इओ य वच्चंतेणं कालेणं समएणं महिड्ढिपत्ते पयाणुसारी वइरसामी नाम दुवालसंगसुअहरे समुपन्ने। तेण य पंचमंगल-महासुयक्खंधस्स उध्दारो मूलसुत्तस्स मज्झे

लिहिओ। मूलसुत्तं पुण सुत्तत्ताए गणहरेहिं अत्थत्ताए अरिहंतेहिं भगवंतेहिं धम्मतित्थयरेहिं तिलोगमहिएहिं वीरजिणिंदेहिं पन्नवियं त्ति एस वुड्ढसंपयाओ। (महानिशीथ सूत्र, अध्याय ५)

इसका अर्थ यह है कि इस पंचमंगल महाश्रुतस्कंधका व्याख्यान महान प्रबंधसे, अनन्त गम और पर्यायों सहित, सूत्रकी प्रियभूत, निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णियों व्दारा जैसा अनन्त ज्ञान-दर्शनके धारक तीर्थंकरोंने किया था उसी प्रकार संक्षेपमें व्याख्यान करने योग्य था। किन्तु आगे कालपरिहानिके दोषसे वे निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णियां विच्छिन्न हो गई। फिर कुछ काल जानेपर यथासमय महाऋध्दिको प्राप्त पदानुसारी वइरसामी (वैरस्वामी या वज्रस्वामी) नामके व्दादशांग श्रुतके धारक उत्पन्न हुए। उन्होंने पंचमंगल महाश्रुतस्कंधका उध्दार मूलसूत्रके मध्य लिखा। यह मूलसूत्र सूत्रत्वकी अपेक्षा गणधरों व्दारा तथा अर्थकी अपेक्षासे अरहंत भगवान, धर्मतीर्थकर त्रिलोकमहित वीरजिनेंद्रके व्दारा प्रज्ञापित है, ऐसा वृध्दसम्प्रदाय है।

यद्यपि महानिशीथसूत्रकी रचना श्वेताम्बर सम्प्रदायमें बहुत कुछ पीछेकी अनुमान की जाती है१ (**Winternity : Hist Ind. Lit. II, P 465.**), तथापि उसके रचयिताने एक प्राचीन मान्यताका उल्लेख किया है जिसका अभिप्राय यह है कि इस पंचमंगलरुप श्रुतस्कंधके अर्थकर्ता भगवान् महावीर हैं और सूत्ररुप ग्रंथकर्ता गौतमादि गणधर है। इसका तीर्थंकर कथित जो व्याख्यान था वह कालदोषसे विच्छिन्न हो गया। तब व्दादशांग श्रुतधारी वइरस्वामीने इस श्रुतस्कंधका उध्दार करके उसे मूल सूत्रके मध्यमें लिख दिया । इनमेंसे कोई भी सूत्र वज्रसूरीके नामसे सम्बद्ध नहीं है । उनकी चूर्णियां भद्रबाहुकृत कही जाती है। उन मूल सूत्रोंमें प्रथम सूत्र आवश्यकके मध्यमें णमोकार मंत्र पाया जाता है। अतएव उक्त मान्यताके अनुसार संभवत: यही वह मूलसूत्र है जिसमें वज्रसूरिने उक्त मंत्रको प्रक्षिप्त किया।

कल्पसूत्र स्थविरावलीमें 'वइर' नामके दो आचार्योका उल्लेख मिलता है जो एक दूसरेके गुरु-शिष्य थे। यथा ---

थेरस्स णं अज्ज-सीहगिरिस्स जाइस्सरस्स कोसियगुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जवइरे गोयमसगुत्ते। थेरस्स णं अज्जवइरस्स गोयमसगुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जवइरसेणे उक्कोसियगुत्ते२ (पट्टावली समुच्चय (पृ. ३)) ।

अर्थात कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य सिंहगिरीके शिष्य स्थविर आर्य वइर गौतम गोत्रीय हुए, तथा स्थविर आर्य वइर गौतम गोत्रीयके शिष्य स्थविर आर्य वइरसेन उक्कोसिय गोत्रीय हुए।

विक्रमसंवत् १६४६ में संगृहीत तपागच्छ पट्टावलीमें वइरस्वामीका कुछ विशेष परिचय पाया जाता है। यथा -

तेरसमो वयरसामि गुरु।

व्याख्या --- तेरसमो त्ति श्रीसीहगिरिपट्टे त्रयोदश: श्रीवज्रस्वामी यो बाल्यादपि जातिस्मृतिभाग् नभोगमनविद्यया संघरक्षाकृत, दक्षिणस्यां बौध्दराज्ये जिनेन्द्रपूजानिमित्तं पुष्पाद्यानयनेन प्रवचनप्रभावनकृत, देवाभिवंदितो दशपूर्वविदाम-पश्चिमो वज्रशाखोत्पत्तिमूलम्। तथा स भगवान् षण्णवत्यधिकचतु:शत ४९६ वर्षान्ते जात: सन् अष्टौ ८ वर्षाणि गृहे, चतुश्चत्त्वारिंशत् ४४ वर्षाणि व्रते, षट्त्रिंशत् ३६ वर्षाणि युगप्र० सर्वायुरष्टाशीति ८८ वर्षाणि परिपाल्य श्रीवीरात् चतुरशीत्यधिकपंचशत ५८४ वर्षान्ते स्वर्गभाक् । श्रीवज्रस्वामिनो दशपूर्व-चतुर्थ-संहननसंस्थानानां व्युच्छेद:।

चतुष्कुलसमुत्पत्तिपितामहमहं विभुम् ।
दशपूर्वविधिं वन्दे वज्रस्वामिमुनीश्वरम्१ (पट्टावली समुच्चय, पृ. ४७.) ।।

इस उल्लेखपरसे वइरस्वामीके संबंधमें हमें जो बातें ज्ञात होती हैं वे ये हैं कि उनका जन्म वीरनिर्वाण से ४९६ वर्ष पश्चात् हुआ था और स्वर्गवास ५८४ वर्ष पश्चात्। उन्होंने दक्षिण दिशामें भी विहार किया था तथा वे दशपूर्वियोंमें अपश्चिम थे। वीरवंशावलीमें भी उनके उत्तरदिशासे दक्षिणापथको विहार करनेका उल्लेख किया गया है२ (जैन साहित्य संशोधक १,२ परिशिष्ट, पृ. १४) और यह भी कहा गया है कि वहांके 'तुंगिया' नामक नगरमें उन्होंने चातुर्मास व्यतीत किया था। वहांसे उन्होंने अपने एक शिष्यको सोपारक पत्तन (गुजरात) में विहार करनेकी भी आज्ञा दी थी। इन उल्लेखोंपरसे उनके पुष्पदन्ताचार्यकी विहारभूमिसे संबन्ध होनेकी सूचना मिलती है।

तपागच्छ पट्टावलीमें वइरस्वामीसे पूर्व आर्यमंगुका उल्लेख आया है जिनका समय नि. सं. ४६७ बतलाया गया है। यथा ---

सप्तषष्टयधिकचतु:शतवर्षे ४६७ आर्यमंगु:।

आर्यमंगुका कुछ विशेष परिचय नन्दीसूत्र पट्टावलीमें इस प्रकार आया है३ (पट्टावली समुच्चय, पृ. १३) -

भणगं करगं सरगं पभावगं णाण-दंसण-गुणाणं ।

वंदामि अज्जमंगुं सुयसागरपारगं धीरं ।। २८।।

अर्थात् ज्ञान और दर्शन रूपी गुणोंके वाचक, कारक, धारक और प्रभावक, तथा श्रुतसागरके पारगामी धीर आर्यमंगुकी मैं वन्दना करता हूं। इसके अनन्तर अज्जधम्म और भद्दगुत्तके उल्लेखके पश्चात् अज्जवयरका उल्लेख है। इन उल्लेखोंपरसे जान पडता है कि ये आर्यमंगु अन्य कोई नहीं, धवला जयधवलामें उल्लिखित आर्यमंखु ही है,; जिनके विषयमें कहा गया है कि उन्होंने और उनके सहपाठी नागहत्थीने गुणधराचार्य द्वारा पंचमपूर्व ज्ञानप्रवादसे उध्दार किये हुए कसायपाहुडका अध्ययन किया था और उसे जइवसह (यतिवृषभाचार्य) को सिखाया था। उक्त नन्दीसूत्र पट्टावलीमें अज्जवयरके अनन्तर अज्जरक्खिअ और अज्ज नन्दिलखमणके पश्चात् अज्ज नागहत्थी का भी उल्लेख इस प्रकार आया है -

वड्ढ वायगवंसो जसवंसो अज्ज-नागहत्थीणं ।

वागरण-करणभंगिय-कम्मपयडी-पहाणाणं ।। ३० ।।

अर्थात् व्याकरण, करणभंगी व कर्मप्रकृतिमें प्रधान आर्य नागहस्तीका यशस्वी वाचक वंश वृध्दिशील होवे।

इसमें सन्देहको स्थान नही कि ये ही वे नागहत्थी हैं जो धवलादि ग्रन्थोंमें आर्यमंखु के सहपाठी कहे गये हैं। उनके व्याकरणादिके अतिरिक्त 'कम्मपयडी' में प्रधानताका उल्लेख तो बडा ही मार्मिक है। श्वेताम्बर साहित्यमें कम्मपयडी नामका एक ग्रंथ शिवशर्मसूरि कृत पाया जाता है जिसका रचनाकाल अनिश्चित है। एक अनुमान उसके वि. सं. ५०० के लगभगका लगाया जाता है। अतएव यह ग्रंथ तो नागहस्ती के अध्ययनका विषय हो नहीं सकता। फिर या तो यहां कम्मपयडीसे विषयसामान्य का तात्पर्य समझना चाहिये, अथवा, यदि किसी ग्रंथ-विशेष से ही उसका अभिप्राय हो तो वह उसी कम्मपयडी या महाकम्मपयडीपाहुड से हो सकता है जिसका उध्दार पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्योंने षट्खण्डागम रूपसे किया है।

तपागच्छ पट्टावलीसे कोई सवा तीनसौ वर्ष पूर्व वि. सं. १३२७ के लगभग श्री धर्मघोष सूरि व्दारा संग्रहीत 'सिरि-दुसमाकाल-समणसंघ-थयं' नामक पट्टावलीमें तो 'वइर' के पश्चात् ही नागहत्थिका उल्लेख किया गया है। यथा -

बीए तिवीस वइरं च नागहत्थि च रेवईमित्तं

सीहं नागज्जुणं भूइदिन्नियं कालयं वंदे१ ।।१३।।

ये वइर, वइर व्दितीय या कल्पसूत्र पट्टावलीके उक्कोसिय गोत्रीय वईरसेन हैं जिनका समय इसी पट्टावलीकी अवचूरीमें राजगणनासे तुलना करते हुए नि.सं. ६१७ के पश्चात् बतलाया गया है। यथा-

पुष्पमित्र (दुर्बलिका पुष्पमित्र) २० ।। तथा राजा नाहडः ।। १० ।। (एवं) ६०५ शाकसंवत्सर : ।। अत्रान्तरे वोटिका निर्गता । इति ६१७ ।। प्रथमोदय :।। वयरसेण ३ नागहस्ति ६९ रेवतिमित्र ५९ बंभदीवगसिंह ७८ नागार्जुन ७८

पणसयरी सयाइं तिन्नि-सय-समन्निआइं अइकमऊं ।
विक्कमकालाओ तओ बहुली (वलभी) भंगो समुप्पन्नो ।।१।।

इसके अनुसार वीरसंवत्के ६१७ वर्ष पश्चात् वयरसेनका काल तीन वर्ष और उनके अनन्तर नागहस्तिका काल ६९ वर्ष पाया जाता है।

पूर्वोक्त उल्लेखोंका मथितार्थ इस प्रकार निकलता है-श्वेताम्बर पट्टावलियोंमें ‘वइर’ नामके दो आचार्योंका उल्लेख पाया जाता है जिनके नाममें कहीं कहीं ‘अज्ज वइर’ और ‘अज्ज वइरसेन’ इस प्रकार भेद किया गया है। कल्पसूत्र स्थविरावलीमें एकको गौतम गोत्रीय और दूसरेको उक्कोसिय गोत्रीय कहा है और उन्हें गुरु-शिष्य बतलाया है। किन्तु अन्य पिछेकी पट्टावलियोंमें उनके बीच कहीं कहीं एक दो नाम और जुडें हुए पाये जाते हैं। प्रथम अज्जवइरके समयका उल्लेख उनके वीरनिर्वाणके ५८४ वर्षतक जीवित रहनेका मिलता है व अज्ज वइरसेनका उल्लेख वीरनिर्वाणके ६१७ वर्ष पश्चात्का पाया जाता है। इन दोनों आचार्योंसे पूर्व अज्जमंगुका उल्लेख है, तथा उनके अनन्तर नागहत्थिका। अत: इन चारों आचार्योंका समय निम्न प्रकार पडता है -

वीर निर्वाण संवत्	
अज्ज मंगु	४६७
अज्ज वइर	४९६-५८४
अज्ज वइरसेन	६१७-६२०
अज्ज नागहत्थी	६२०-६८९

अज्ज वइर दक्षिणापथको गये, वे दशपूर्वोंके पाठी हुए और पदानुसारी थे तथा उन्होंने पंच णमोकार मंत्र का उध्दार किया। नागहत्थी कम्मपयडिमें प्रधान हुए।

दिगम्बर साहित्योल्लेखोंके अनुसार आचार्य पुष्पदन्तने पहले पहले ‘कम्मपयडि’का उध्दार कर सूत्ररचना प्रारंभ की और उसीके प्रारंभमें णमोकार मंत्र रूपी मंगल निबध्द किया जो धवलाटीकाके कर्ता वीरसेनाचार्यके मतानुसार उनकी मौलिक रचना प्रतीत होती है। अज्जमंखु और नागहत्थि, दोनोंने गुणधराचार्य रचित कसायपाहुडको आचार्य परंपरासे प्राप्त कर यतिवृषभाचार्यको पढाया और यतिवृषभाचार्यने उसपर चूर्णिसूत्र रचे, ऐसा उल्लेख धवलादि ग्रंथोंमें मिलता है । यतिवृषभकृत ‘तिलोयपण्णत्ति’ में ‘वइरजस’ नामके आचार्यका उल्लेख मिलता है जो प्रज्ञाश्रमणोंमें अन्तिम कहे गये हैं। यथा -

पण्हसमणेसु चरिमो वइरजसो णाम१ (संतपरू वणा१, भूमिका पृ. ३०, फुटनोट.)।

आश्चर्य नहीं जो ये अन्तिम प्रज्ञाश्रमण वइरजस (वज्रयश) श्वेताम्बर पट्टावलियोके पदानुसारी वइर (वज्रस्वामी) ही हों। पदानुसारित्व और प्रज्ञाश्रमणत्व दोनों ऋध्दियोंके नाम हैं और ये दोनों ऋध्दियां एक ही बुध्दि ऋध्दिके उपभेद

हैं२ (राजवार्तिक पृ. १४३.) । धवलान्तर्गत वेदनाखण्डमें निबध्द गौतमस्वामीकृत मंगलाचरणमें इन दोनों ऋध्दियोंके धारक आचार्योंको नमस्कार किया गया है, यथा -

णमो पदानुसारीणं ।। ८ ।। णमो पण्हसमणाणं ।। १८ ।।

इस प्रकार इन आचार्योंकी दिगम्बर मान्यताका क्रम निम्न प्रकार सूचित होता है ---

धरसेन गुणधर

पुष्पदन्त भूतबलि अन्तिमप्रज्ञाश्रमण आर्यमंखु

नागहत्थी

वइरजस

यतिवृषभ

वइरजसका नाम यतिवृषभसे पूर्व ठीक कहां आता है इसका निश्चय नहीं। आर्यमंखु और नागहत्थीके समकालीन होनेकी स्पष्ट सूचना पाई जाती है क्योंकि उन दोनोंने क्रमसे यतिवृषभको

कसायपाहुड पढाया था। क्रमसे पढानेसे तथा आर्यमंखुका नाम सदैव पहले लिये जानेसे इतना ही अनुमान होता है कि दोनोमें आर्यमंखु संभवत: जेठे थे। ये दोनों नाम श्वेताम्बर पट्टावलियोंमें कोई १३० वर्षके अन्तरसे दूर पड़ जाते हैं जिससे उनका समकालीनत्व नहीं बनता। किन्तु यह बात विचारणीय है कि श्वेताम्बर पट्टावलियोंमें ये दोनों नाम कहीं पाये जाते हैं और कहीं छोड़ दिये जाते हैं, तथा कहीं उनमेंसे एकका नाम मिलता है दूसरेका नहीं। उदाहरणार्थ, सबसे प्राचीन 'कल्पसूत्र स्थविरावली' तथा 'पट्टावली सारोध्दार' में ये दोनों नाम नही हैं, और 'गुरू पट्टावली' में आर्यमंगुका नाम है पर नागहत्थीका नहीं है१ (देखो पट्टावली समुच्चय I)। फिर आर्यमंखु और नागहत्थीने जिनका रचा हुआ कसायपाहुड आचार्य-परंपरासे प्राप्त किया था वे गुणधराचार्य दिगम्बर उल्लेखोंके अनुसार महावीर स्वामीसे आचार्य-परंपराकी अट्ठाईस पीढी पश्चात् निर्वाण संवत्की सातवी शताब्दिमें हुए सूचित होते हैं जब कि श्वेताम्बर पट्टावलियोंमें उन दोनोंमें से एक पाचवी और दूसरे सातवीं शताब्दिमें पडते हैं। इस प्रकार इन सब उल्लेखों परसे निम्न प्रश्न उपस्थित होते हैं-

१ क्या 'तिलोय-पण्णत्ति' में उल्लिखित 'वइरजस'और महानिशीथसूत्रके पदानुसारी 'वइरसामी' तथा

श्वेतांबर पट्टावलियोंके 'अज्ज वइर' एक ही हैं?

२ 'वइरस्वामीने मूलसूत्रके मध्य पंचमंगलश्रुतस्कंधका उध्दार लिख दिया' इस महानिशीथसूत्रकी सूचनाका तात्पर्य क्या है? क्या धवलाकारद्वारा सूचित णमोकार मंत्रके कर्तृत्वका इससे सामत्रजस्य बैठ सकता है?

३ क्या धवलादि श्रुतमें उल्लिखित आर्यमंखु और नागहत्थी तथा श्वेताम्बर पट्टावलियोंके अज्जमंगु और नागहत्थी एक ही हैं? यदि एक ही हैं, तो एक जगह दोनोंकी समसामयिकता प्रकट होने और दूसरी जगह उनके बीच

एकसौ तीस वर्षका अन्तर पढनेका क्या कारण हो सकता है? पट्टावलियोंमें भी कहीं उनके नाम देने और कहीं छोड़ दिये जानेका भी कारण क्या है?

४ जिस कम्मपयडीमें नागहत्थीने प्रधानता प्राप्त की थी क्या वह पुष्पदन्त भूतबलि द्वारा उध्दारित-कम्मपयडिपाहुड हो सकता है?

५ दिगंबर और श्वेताम्बर पट्टावलियों आदिमें उक्त आचार्योंके कालनिर्देशमें वैषम्य पडनेका कारण क्या है?

इन प्रश्नोंमेंसे अनेकके उत्तर पूर्वोक्त विवेचनमें सूचित या ध्वनित पाये जावेंगे, फिर भी उन सबका प्रामाणिकतासे उत्तर देना विना और भी विशेष खोज और विचारके संभव नहीं है। इस कार्यके लिये जितने समयकी आवश्यकता है उसकी भी अभी गुंजाइश नहीं है। अत: यहां इतना ही कहकर यह प्रसंग छोडा जाता है कि उक्त आचार्यों संबन्धी दोनों परंपराओंके उल्लेखोंका भारी रहस्य अवश्य है, जिसके उध्दाटनसे दोनों सम्प्रदायोंके प्राचीन इतिहास और उनके बीच साहित्यिक आदान प्रदानके विषयपर विशेष प्रकाश पडनेकी आशा की जा सकती है।

इस प्रकरणको समाप्त करनेसे पूर्व यहां यह भी प्रकट कर देना उचित प्रतीत होता है कि श्वेताम्बर आगमके अन्तर्गत भगवतीसूत्रमें जो पंच-नमोकार-मंगल पाया जाता है उसमें पंचम पद अर्थात् 'णमो लोए सव्वसाहूणं' केस्थानपर 'णमो बंभीए लिवीएं' (ब्राम्ही लिपिको नमस्कार) ऐसा पद दिया गया है। उडीसाकी हाथीगुफामें जो कलिंग नरेश खारवेलका शिलालेख पाया जाता है और जिसका समय ईसवी पूर्व अनुमान किया जाता है, उसमें आदि मंगल इस प्रकार पाया जाता है -

णमो अरहंताणं । णमो सव सिधाणं ।

ये पाठभेद प्रासंगिक है या किसी परिपाटीको लिये हुए हैं, यह विषय विचारणीय है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें किसी किसीकेमतसे णमोकार सूत्र अनार्ष है१

बारहवें श्रुताङ्ग दृष्टिवादका परिचय

हम सत्प्ररूपणा प्रथम जिल्दकी भूमिकामें कह आये हैं कि बारहवां श्रुतांग दृष्टिवाद श्वेताम्बर मान्यताके अनुसार भी विच्छिन्न हो गया, तथा दिगम्बर मान्यतानुसार उसके कुछ अंशोका उध्दार षट्खण्डागम और कषायप्राभृतमें पाया जाता है। किन्तु शेष भागोंके प्रकरणों व विषय आदिका संक्षिप्त परिचय दोनों सम्प्रदायोंके साहित्यमें बिखरा हुआ पाया जाता है। अत: लुप्त हुए श्रुतांगके इस परिचयको हम दोनों सम्प्रदायोंके प्राचीन प्रमाणभूत ग्रंथोंके आधारपर यहां तुलनात्मक रू पमें प्रस्तुत करते हैं, जिससे पाठक इस महत्त्वपूर्ण विषयमें रूचि दिखला सकें और दोनों सम्प्रदायोंकी मान्यताओंमें समानता और विषमता तथा दोनोंकी परस्पर

परिपूरकताकी ओर ध्यान दे सकें। इस परिचयका मूलाधार श्वेताम्बर सम्प्रदायके नन्दीसूत्र और समवायांगसूत्र हैं तथा दिगंबर सम्प्रदायके धवल और जयधवल ग्रंथ।

धवलामें दृष्टिवादका स्वरूप इस प्रकार बतलाया है-

तस्य दृष्टिवादस्य स्वरूपं निरूप्यते। कौत्कल-कानेविध्दि-कौशिक-हरिश्मश्रु-मांध्दपिक-रोमश-हारीत-मुण्ड-अश्वलायनादीनां क्रियावाददृष्टीनामशीतिशतम्, मरीचि-कपिलोलूक-गार्ग्य-व्याघ्रभूति-वाद्वलि-माठर-मौद्गलायनादीनामक्रियावाददृष्टिनां चतुरशीतिः, शाकल्य-वल्कल-कुथमि सात्यमुग्रि-नारायण-कण्व-माध्यंदिनमोद-पैप्पलाद-बादरायण-स्वेष्टकृदैतिकायन-वसु-जैमिन्यादी-नामज्ञानिकदृष्टींनां सप्तपष्टिः, वशिष्ट-पाराशर-जतुकर्ण्-वाल्मीकि-रोमहर्षणी-सत्यदत्त-व्यासैलापुत्रौपमन्यवैन्द्रदत्तायस्थूणादीनां वैनयिकदृष्टीनां द्वात्रिंशत्। एषां दृष्टिशतानां त्रयाणां त्रिषष्टयुत्तराणां प्ररूपणं निग्रहश्च दृष्टिवादे क्रियते।

(सं. प. पृ. १०७.)

इसका अभिप्राय यह है कि दृष्टिवाद अंगमें १८० क्रियावाद, ८४ अक्रियावाद, ६७ अज्ञानिकवाद और ३२ वैनयिकवाद, इस प्रकार कुल ३६३ दृष्टियोंका प्ररूपण और उनका निग्रह अर्थात् खंडन किया गया है। इन वादों और दृष्टियोंके कर्ताओंके जो नाम दिये गये हैं, उनमेंसे अनेक नाम वैदिक धर्मके भिन्न भिन्न साहित्यांगोंसे सम्बध्द पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ - हारीत, वशिष्ठ, पाराशर सुप्रसिध्द स्मृतिकारोंके नाम हैं। व्यासकृत स्मृति भी प्रसिध्द है और वे महाभारत के कर्ता कहे जाते हैं। वाल्मीकीकृत रामायण सुविख्यात है, पर धर्मशास्त्रसंबंधी उनका बनाया ग्रंथ नहीं पाया जाता। आश्वलायन श्रौतसूत्र भी प्रसिध्द है। गर्गका नाम एक ज्योतिषसंहितासे सम्बध्द है। कण्व ऋषिका नाम भी वैदिकसाहित्यसे सम्बन्ध रखता है। माध्यंदिन एक वैदिक शाखाका नाम है। बादरायण वेदान्तशस्त्रके और जैमिनी पूर्वमीमांसाके सुप्रसिध्द संस्थापक हैं। किन्तु शेष अधिकांश नाम बहुत कुछ अपरिचितसे हैं। इन नामोंके साथ उन उन दृष्टियोंका संबंध किन्ही ग्रन्थोंपरसे चला है या उनकी चलाई कोई अलिखित विचारपरम्पराओंपरसे कह गया है यह जानना कठिन है। पर तात्पर्य यह स्पष्ट है कि दृष्टिवादमें अनेक दार्शनिक मत-मतान्तरोंका परिचय और विवेक कराया गया था। दृष्टिवादके जो भेद आगे बतलाये गये हैं उनमें सूत्र और पूर्वोंकेभीतर ही इन वादोंकेपरिशीलनकी गुंजाइश दिखाई देती है।

श्वेताम्बर मान्यता	दिगम्बर मान्यता

दिट्ठिवाद१ के५ भेद	दिट्ठिवाद१ के५ भेद
१ परिकम्म२	१ परिकम्म२
२ सुत्त	२ सुत्त
३ पुव्वगय	३ पढमाणिओग
४ अणुओग	४ पुव्वगय
५ चूलिया	५ चूलिया

----

१ अथ कोऽयं दृष्टिवादः? दृष्टयो दर्शनानि, वदनं वादः। दृष्टीनां वादो दृष्टिवादः। अथवा पतनं पातः, दृष्टिनां पातो यत्र स दृष्टिपातः। (नंदीसूत्र टीका)	१ दृष्टीनां त्रिषष्टयुत्तरत्रिशतसंख्यानां मिथ्यादर्शनानां वादोऽनुवादः, तन्निराकरणं च यस्मिन्क्रियते तद् दृष्टिवादं नाम। (गोम्मटसार टीका)
२ तत्र परिकर्म नाम योग्यतापादनम्। तध्देतुः शास्त्रमपि परिकर्म। x x x तथा चोक्तं चूर्णौ-परिकम्मे त्ति योग्यताकरण। जह गणियस्स सोलस परिकम्मा तग्गहिय-सुत्तत्थो सेस गणियस्स जोग्गो भवइ, एवं गहियपरिकम्मसुत्तत्थो सेस-सुत्ताइ-दिट्ठिवायस्स जोग्गो भवदु त्ति । (नंदीसूत्र टीका)	२ परितः सर्वतः कर्माणि गणितकरणसूत्राणि यस्मिन् तत् परिकर्म। (गोम्मटसार टीका)

दोनों संप्रदायोंमें दृष्टिवादके इन पाच भेदोंके नामोंमें कोई भेद नही है, केवल अणियोगकी जगह दिगम्बर नाम पढमाणियोग पाया जाता है। इसका रहस्य आगे बताये हुए प्रभेदोंसे जाना जायगा। दुसरा कुछ अन्तर पुव्वगय और अणियोगके क्रममें है।श्वेताम्बर पुव्वगयको पहले और

अणियोगको उसके पश्चात् गिनते हैं; जब कि दिगम्बर पढमाणियोगको पहले और पुव्वगयको उसके अनन्तर रखते हैं। यह भेद या तो आकस्मिक हो, या दोनों सम्प्रदायोंके प्राचीन पठनक्रमके भेदका द्योतक हो। दिगम्बरीय क्रमकी सार्थकता आगे पूर्वोंके विवेचनमें दिखायी जावेगी।

परिकर्मके ७ भेद	परिकर्मके ५ भेद
१ सिध्दसेणिआ	१ चंदपण्णत्ती
२ मणुस्ससेणिआ	२ सूरपण्णत्ती
३ पुट्ठसेणिआ	३ जंबूदीवपण्णत्ती
४ ओगाढसेणिआ	४ दीवसायरपण्णत्ती
५ उवसंपज्जणसेणिआ	५ वियाहपण्णत्ती
६ विप्पजहणसेणिआ	
७ चुआचुअसेणिआ	

ये परिकर्मके भेद दोनों सम्प्रदायोंमें संख्या और नाम दोनों बातोमें एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं। सिध्दश्रेणिकादि भेदोंका क्या रहस्य था, यह ज्ञात नहीं रहा। समवायांगके टीकाकार कहते हैं -

'एतच्च सर्व समूलोत्तरभेदं सूत्रार्थतो व्यवच्छिन्नं'

अर्थात् यह सब परिकर्मशास्त्र अपने मूल और (आगे बतलाये जानेवाले) उत्तर भेदोंसहित सूत्र और अर्थ दोनों प्रकारसे नष्ट हो गया ं किन्तु सूत्रकार व टीकाकारने इन सात भेदोंके सम्बन्धमें कुछ बातें ऐसी बतलायीं है जो बडी महत्त्वपूर्ण हैं। परिकर्मके सात भेदोंके सम्बन्धमें वे लिखते है -

इच्चेयाइं छ परिकम्माइं ससमइयाइं, सत्त आजीवियाइं; छ चउक्क-णइयाइं, सत्त तेरसियाइं।

(समवायांगसूत्र)

एतेषां च परिकर्मणां षट् आदिमानि परिकर्माणि स्वसामयिकान्येव। गोशालक-प्रवर्तिताजीविक-पाखण्डिक- सिध्दान्तमतेन पुन:च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्मसहितानि सप्त प्रज्ञाप्यन्ते। इदानीं परिकर्मसु नय-चिन्ता। तत्र नैगमो व्दिविध:सांग्राहिकोऽसांग्राहिकश्च। तत्र

सांग्राहिक: संग्रहं प्रविष्टोऽसांग्राहिकश्च व्यवहारम्। तस्मात्संग्रहो व्यवहार ऋजुसूत्र: शब्दादयश्चैक एवेत्येवं चत्वारो नया:। एतैश्चतुर्भिर्नयै: षट् स्वसामयिकानि परिकर्माणि चिन्त्यन्ते, अतो भणितं 'छ च उक्क-नयाइं' ति भवन्ति। त एव चाजीविकास्त्रैराशिका भणिता:। कस्माद्? उच्यते यस्मात्ते सर्व त्र्यात्मकमिच्छन्ति, यथा जीवोऽजीवो जीवाजीव:, लोकोऽलोको लोकालोक:, सत् असत् सदसत् इत्येवमादि। नयचिन्तायामपि ते त्रिविधं नयमिच्छन्ति। तद्यथा द्रव्यार्थिक: पर्यायार्थिक: उभयार्थिक:। अतो भणितं 'सत्त तेरासिय' त्ति। सप्त परिकर्माणि त्रैराशिकपाखण्डिकास्त्रिंविधया नयचिन्तया चिन्तयन्तीत्यर्थ:। (समवायांग टीका)

इसका अभिप्राय यह है कि परिकर्मके जो सात भेद ऊपर गिनाये गये हैं उनमेंसे प्रथम छ भेद तो स्वसमय अर्थात् अपने सिध्दान्तके अनुसार हैं, और सातवां भेद आजीविक सम्प्रदायकी मान्यताके अनुसार है। जैनियोंके सात नयोंमेंसे प्रथम अर्थात् नैगम नयका तो संग्रह और व्यवहारमें अन्तर्भाव हो जाता है, तथा अन्तिम दो अर्थात् समभिरू ढ और एवंभूत शब्दनयमें प्रविष्ट हो जाते हैं इस प्रकार मुख्यतासे उनके चार ही नय रहते हैं, संग्रह, व्यवहार, ॠजुसूत्र और शब्द। इस अपेक्षासे जैनी चउक्कणइक अर्थात् चतुष्कनयिक कहलाते हैं। आजीविक सम्प्रदायवाले सब वस्तुओंको; त्रि-आत्मक मानते हैं, जैसे जीव, अजीव और जीवाजीव; लोक, अलोक और लोकालोक; सत्, असत्, और सदसत्, इत्यादि। नयका चिन्तन भी वे तीन प्रकारसे करते है-द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक और उभयार्थिक। अत: आजीविक तेरासिय अर्थात् त्रैराशिक भी कहलाते हैं। उन्हींकी मान्यतानुसार परिकर्मका सातवां भेद 'चुआचुअसेणिआ' जोडा गया है।

इस सूचनासे जैन और आजीवक सम्प्रदायोंके परस्पर सम्पर्कपर बहुत प्रकाश पडता है। मंखलिगोशाल महावीरस्वामी व बुध्ददेवके समसामयिक धर्मोपदेशक थे। उनके द्वारा स्थापित आजीविक सम्प्रदायके बहुत उल्लेख प्राचीन बौध्द और जैन ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। प्रस्तुत सूचनापर से जाना जाता है कि उनका शास्त्र और सिध्दांन्त जैनियोंके शास्त्र और सिध्दान्तके बहुत ही निकटवर्ती था, केवल कुछ कुछ भेद-प्रभेदों और दृष्टिकोणोंमें अन्तर था। भूमिका जैनियों और आजीविकोंकी प्राय: एक ही थी। आगे चलकर, जान पढता है, जैनियोंने आजीविकोंकी मान्यताओं को अपने शास्त्रमें भी संग्रह कर लिया और इस प्रकार धीरे धीरे समस्त आजीविक पंथका अपने ही समाजमें अन्तर्भाव कर लिया। ऊपरकी सूचनामें यद्यपि

टीकाकारने आजीविकोंको पाखंडी कहा है, पर उनकी मान्यताको वे अपने शास्त्रमें स्वीकार कर रहे हैं।

परिकर्मके पूर्वोक्त सात भेद दिगम्बर मान्यतामें नहीं पाये जाते। पर इस मान्यताके जो पांच भेद चंदपण्णत्ति आदि हैं, उनमें से प्रथम तीन तो श्वेताम्बर आगमके उपांगोंमें गिनाये हुए मिलते हैं, तथा चौथा दीवसायरपण्णत्ती व जंबूदीवपण्णत्ती और चंदपण्णत्तीके नाम नंदीसूत्रमें अंगबाह्य श्रुतके आवश्यकव्यतिरिक्त भेदके अन्तर्गत पाये जाते हैं। किन्तु पांचवां भेद वियाहपण्णत्तिका नाम पांचवें श्रुतांगकेअतिरिक्त और नहीं पाया जाता।

सिध्दसेणिआ परिकम्मके १४ उपभेद

१ चंदपण्णत्ती - छत्तीसलक्खपंचपदसहस्सेहि (३६०५०००) चंदायु-परिवारिध्दि-गइ बिंबुस्सेह-वण्णणं कुणइ।

१ माउगापयाइं

२ एगट्ठिअपयाइं

३ ं अट्ठ या पादोट्ठ १(ये पाठभेद नंदीसूत्र और समवायांगकेहैं।) पयाइं

४ पाढोआमास या आगास पयाइं

२ सूरपण्णत्ती - पंचलक्खतिण्णिसहस्सेहि पदेहि (५०३०००) सूरस्सायु-भोगोव-भोग- परिवारिध्दि-गइ-बिंबुस्सेह-दिणकिर-णुज्जोव-वण्णणं कुणइ ।

५ केउभूअं

६ रासिबध्दं

७ एगगुणं

८ दुगुणं

३ जंबूदीवपण्णत्ती - तिण्णिलक्खपंचवीस-

९ तिगुणं पदसहस्सेहि (३२५०००) जंबूदीवे

१० केउभूअं णाणाविहमणुयाणं भोग-कम्मभूमियाणं अण्णेसिं

११ पडिग्गहो च पव्वद-दह-णइ-वेइयाणं

१२ संसारपडिग्गहो वस्सावासाकट्टिमजिणहरादीणं वण्णणं कुणइ।

१३ नंदावत्तं

१४ सिध्दावत्तं

मणुस्ससेणिआ परिकम्मकेभी १४ भेद

है जिनमें प्रथम १३ भेद उपर्युक्त ही हैं[१]

१४ वां भेद 'मणुस्सावत्तं' नामका है। ४ दीवसायरपण्णत्ती - बावण्णलक्खछत्तीस-

पदसहस्सेहि। (५२३६०००) उध्दार-

पल्लपमाणेण दीवसायरपमाणं

अण्णं पि दीवसायरंतब्भूदत्थं बहुभेयं वण्णेदि।

पुट्ठसेणिआदि शेष पांच परिकर्मोंमें प्रत्येक के ११

उपभेद हैं जो प्रथम तीनको छोडकर शेष पूर्वोक्तही हैं।

अन्तिम भेदके स्थानमें स्वनामसूचक भेद है, जैसे पुट्ठावत्तं,

ओगाढावत्तं, उवसंपज्जणावत्तं, विप्पजहणावत्तं और चुआ

चुआवत्तं। इस प्रकार ये सब मिलकर ८३ प्रभेद होते हैं२। (सिद्धसेणिकादिपरिकर्म मूलभेदतः सप्तविधं, उत्तरभेदवस्तु त्र्यशीतिविधं मातृकापदादि।

(समवायांग टीका)

५ वियाहपण्णत्ती - चउरासीदिलक्खछत्तीस-

पदसहस्सेहि (८४३६०००) रू वि-अजीवदव्वं

अरू वि-अजीवदव्वं

भवसिध्दियअभवसिध्दियरासिं

वण्णेदि।

परिकर्मके इन माउगापयाइं आदि उपभेदोंका कोई विवरण हमें उपलभ्य नहीं है। किन्तु मातृकापदसे जान पडता है उसमें लिपि विज्ञानका विवरण था। इसी प्रकार अन्य भेदोंमें शिक्षाके मूलविषय गणित, न्याय आदिका विवरण रहा जान पडता है।

सुत्तके ८८ भेद | सुत्तके अन्तर्गत विषय

१ उज्जुसुयं या उजुग | सुत्तं अट्ठासीदिलक्खपदेहि (८८०००००)

२ परिणयापरिणयं | अबंधओ, अवलेवओ, अकत्ता, अभोत्ता,

३ बहुभंगिअं | णिग्गुणो, सव्वगओ, अणुमेत्तो, णत्थि

४ विजयचरियं, विप्पचइयं या विनयचरियं | जीवो, जीवो चेव अत्थि, पुढवियादीणं

५ अणंतरं | समुदएण जीवो उप्पज्जइ, णिच्चेयणो,

६ परंपरं | णाणेण विणा, सचेयणो, णिच्चो, अणिच्चो

७ मासाणं (समाणं-स. अं.) | अप्पेत्ति वण्णेदि। तेरासियं, णियदिवादं,

८ संजूहं (मासाणं - ,,) | विण्णाणवादं, सद्दवादं, पहाणवादं, दव्व-

९ संभिण्णं | वादं, पुरिसवादं च वण्णेदि ।उत्तं च -

१० आहव्वायं (अहाच्चायं - अं. स.) | अठ्टासी अहियारेसु चउण्हमहियाराणमत्थि

११ सोवत्थिअवत्तं | णिद्देसो । पढमो अबंधयाणं, विदियो

१२ नंदावत्तं | तेरासियाण बोध्दव्वो । तदियो -

१३ बहुलं णियइपक्खे हवइ चउत्थो ससमयम्मि।

१४ पुट्ठापुठ्टं (धवला सं.प., पृ. ११०)

१५ विआवत्तं सुत्ते अट्ठासीदि अत्थाहियारा, ण तेसिं

१६ एवंभूअं णामाणि जाणिज्जंति, संपहि विसिट्ठुवएसा

१७ दुयावत्तं भावादो (जयधवला)

१८ वत्तमाणप्पयं

१९ समभिरुढं

२० सव्वओभद्दं

२१ पस्सासं (पणामं. स.अं.)

२२ दुप्पडिग्गहं

ये ही २२ सूत्र चार प्रकारसे प्ररू पित हैं-

१ छिण्णछेअ-णइयाणि

२ अछिण्णछेअ-णइयाणि

३ तिक-णइयाणि

४ चउक्क-णइयाणि

इस प्रकार सूत्रोंकी संख्या २२ x ४ = ८८ हो जाती है।

श्वेतांबर सम्प्रदायमें सूत्रके मुख्य भेद बावीस हैं। उनके अठासी भेदोंकी सूचना समवायांगमें इस प्रकार दी गई हैं---

इच्चेयाइं वावीसं सुत्ताइं छिण्णछेअणइआइं ससमय-सुत्तपरिवाडीए, इच्चेआइं वावीसं सुत्ताइं अछिन्नछेयनइयाइं आजीवियसुत्तपरिवाडीए। इच्चेआइं वावीसं सुत्ताइं तिक-णइयाइं तेरासियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेआइं वावीसं सुत्ताइं चउक्कणइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए। एवमेव सपुव्वावरेणं अट्ठासीदि सुत्ताइं भवंतीति मक्खयाइं।

यहां जिन चार नयोंकी अपेक्षासे बावीस सूत्रोंके अठासी भेद हो जाते हैं, उनका स्पष्टीकरण टीकामें इस प्रकार पाया जाता है -

एतानि किल ऋजुकादीनि द्वाविंशतिः सूत्राणि, तान्येव विभागतोऽष्टाशीतिर्भवन्ति। कथम्? उच्यते-इच्चेइयाइं वावीसं सुत्ताइं छिन्नछेयनइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए त्ति। इह यो नयः सूत्रं छिन्नं छेदेनेच्छति स छिन्नच्छेदनयो, यथा 'धम्मो मंगलमुक्किट्अठं' इत्यादि श्लोकः सूत्रार्थत्: प्रत्येकछेदेने स्थितो न द्वितीयादिश्लोकमपेक्षते, प्रत्येककल्पितपर्यंत इत्यर्थः। एतान्येव द्वाविंशतिः स्वसमयसूत्रपरिपाट्या सूत्राणि स्थितानि ˘ तथा इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि अच्छिन्नच्छेद-नयिकान्याजीविकसूत्रपरिपाट्येति, अयमर्थः- इह यो नयः सूत्रमच्छिन्नं छेदेनेच्छति सोऽछिन्नछेदनयो यथा, 'धम्मो मंगलमुक्क्टि,' इत्यादि श्लोक एवार्थतो द्वितीयादिश्लोकमपेक्षमाणो द्वितीयादयश्च प्रथममिति अन्योऽन्यसापेक्ष इत्यर्थः ˘ एतानि द्वाविंशतिराजीविकगोशालक-प्रवर्तितपाखंडसूत्रपरिपाट्या अक्षररचनाविभागस्थितान्यप्यर्थतोऽन्योन्य-मपेक्षमाणानि भवन्ति। 'इच्चेयाइं' इत्यादिसूत्रम्। तत्र तिकणइयाइं ति नयत्रिकाभिप्रायतश्चिन्त्यन्त इत्यर्थस्त्रैराशिका-श्चाजीविका एवोच्यन्ते इति। तथा 'इच्चेयाई' इत्यादिसूत्रं। तत्र ' चउक्कणइयाइं' ति नयचतुष्काभिप्रायतश्चिन्त्यन्त इति भावना, एवमेवेत्यादिसूत्रम्। एवं चतस्त्रो द्वाविंशतयोऽष्टाशीतिः सूत्राणि भवन्ति।

इस विवरणसे ज्ञात होता है कि उपर्युक्त बावीस सूत्रोंका चार प्रकारसे अध्ययन या व्याख्यान किया जाता था। प्रथम परिपाटी छिन्नछेदनय कहलाती थी जिसमें सूत्रगत एक एक वाक्य, पद या श्लोकका स्वतंत्रतासे पूर्वापर अपेक्षारहित अर्थ लगाया जाता था। यह परिपाटी स्वसमय अर्थात् जैनियोंमें प्रचलित थी। दूसरी परिपाटी अछिन्नछेदनय थी जिसकेअनुसार प्रत्येक वाक्य, पद या श्लोकका अर्थ आगे पीछेके वाक्योंसे संबंध लगाकर बैठाया जाता था। यह परिपाटी आजीविक सम्प्रदायमें चलती थी। तीसरा प्रकार त्रिकनय कहलाता था जिसमें द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक और उभयार्थिक व जीव, अजीव और जीवाजीव आदि उपर्युक्त त्रि-आत्मक व त्रिनय रू पसे वस्तुस्वरू पका चिन्तन किया जाता था। पूर्वोक्तानुसार यह परिपाटी आजीवकोंकी थी। तथा जो वस्तुस्वरू पका चिन्तन किया जाता था। पूर्वोक्तानुसार यह परिपाटी आजीवकोंकी थी। तथा जो वस्तुचिन्तन पूर्वकथित चार नयोंकी अपेक्षासे चलता था वह चतुर्नय परिपाटी कहलाती

थी और वह जैनियों की चीज थी। इस प्रकार निरपेक्ष शब्दार्थ और चतुर्नय चिन्तन, ये दो परिपाटियां जैनियोंकी और सापेक्ष शब्दार्थ तथा त्रिकनय चिन्तन, ये दो परिपाटियां आजीविकोंकी मिलकर बावीस सूत्रोंके अठासी भेद कर देती थीं। आजीविक ज्ञानशैलीको जैनियोंने किस प्रकार अपने ज्ञानभंडार में अन्तर्भूत कर लिया यह यहां भी प्रकट हो रहा है।

दिगम्बर सम्प्रदायमें सूत्रोंकेभीतर प्रथम जीवका नाना दृष्टियोंसे अध्ययन और फिर दूसरे अनेक वादोंका अध्ययन किया जाता था, ऐसा कहा गया है। इन वादों में तेरासिय मतका उल्लेख सर्व प्रथम है जिससे तात्पर्य त्रैराशिक-आजीविक सिध्दान्तसे ही है, जो जैन सिध्दान्तके सबसे अधिक निकट होनेके कारण अपने सिध्दान्तके पश्चात् ही पढा जाता था। धवलामें सूत्रके ८८ अधिकारोंका उल्लेख है जिनमेंसे केव्रल चारके नाम दिये हैं। जयधवलामें स्पष्ट कह दिया है कि उन ८८ अधिकारोंके अब नामोंका भी उपदेश नहीं पाया जाता। किन्तु जो कुछ वर्णन दिगम्बर सम्प्रदायमें शेष रहा है उसमें विशेषता यह है कि वह उन लुप्त ग्रंथोंकेविषयपर बहुत कुछ प्रकाश डालता है; श्वेताम्बर श्रुतमें केव्रल अधिकारोंके नाममात्र शेष हैं जिनसे प्राय: अब उनकेविषयका अंदाज लगाना भी कठिन है।

पुव्वगयके१४ भेद तथा उनकेअन्तर्गत वत्थू और चूलिका	पुव्वगयके१४ भेद तथा उनकेअन्तर्गत वत्थ्
१ उप्पायं (१० वत्थू + ४ चूलिआ)	१ उप्पाद (१० वत्थू)
२ अग्गाणीयं (१४ वत्थू + १२ चूलिआ)	२ अग्गेणियं (१४ वत्थू)
३ वीरिअं (८ वत्थू + ८ चूलिआ)	३ वीरियाणुपवादं (८ वत्थू)
४ अत्थिणत्थिप्पवायं (१८ + १०)	४ अत्थिणत्थिपवादं (१८ वत्थू)
५ नाणप्पवायं (१२ वत्थू)	५ णाणपवादं (१२ वत्थू)
६ सच्चप्पवायं (२ वत्थू)	६ सच्चपवादं (१२ वत्थू)
७ आयप्पवायं (१६ वत्थू)	७ आदपवादं (१६ वत्थू)
८ कम्मप्पवायं(३० वत्थू)	८ कम्मपवादं (२० वत्थू)
९ पच्चक्खाणप्पवायं (२० वत्थू)	९ पच्चक्खाणं (३० वत्थू)
१०विज्जाणुप्पवाय (१५ वत्थू)	१० विज्जाणुवादं (१५ वत्थू)

११ अवंझं (१२ वत्थू)	११ कल्लाणवादं (१० वत्थू)
१२ पाणाऊ (१३ वत्थ्)	१२ पाणावायं (१० वत्थू)
१३ किरिआविसालं (३० वत्थू)	१३ किरियाविसालं (१० वत्थू)
१४ लोकविंदुसारं (२५ वत्थू)	१४ लोकविंदुसारं (१० वत्थू)

दृष्टिवादके इस विभागका नाम पूर्व क्यों पडा, इसका समाधान सगवायांग व नन्दीसूत्रके टीकाओंमें इस प्रकार किया गया है -

अथ किं तत् पूर्वगतं? उच्यते। यस्मातीर्थकर: तीर्थप्रवर्त्तनाकाले गणधराणां सर्वसूत्राधारत्वेन पूर्व पूर्वगतं सूत्रार्थ भाषते तस्मात् पूर्वाणीति भणितानि। गणधरा: पुन: श्रुतरचनां विदधाना आचारादिक्रमेण रचयन्ति स्थापयन्ति च। मतान्तरेण तु पूर्वगतसूत्रार्थ: पूर्वमर्हता भाषितो गणधरैरपि पूर्गगतश्रुतमेव पूर्व रचितं, पश्चादाचारादि। नन्वेवं यदाचारनिर्युक्त्यांगभिहितं 'सव्वेसिं आयारो पडमो' इत्यादि, तत्कथम्? उच्यते। तन्न स्थापनामाश्रित्य तथोक्तमिह त्वक्षररचनां प्रतीत्य भणितं पूर्व पूर्वाणि कृतानीति।

(समवायांग टीका)

इसका तात्पर्य यह है कि तीर्थप्रवर्तनके समय तीर्थंकर अपने गणधरोंको सबसे प्रथम पूर्वगत सूत्रार्थका ही व्याख्यान करते हैं, इससे इन्हें पूर्वगत कहा जाता है। किन्तु गणधर जब श्रुतकी ग्रंथरचना करते हैं तब वे आचारादिक्रमसे ही उनकी रचना व व्यवस्था करते हैं, और इसी स्थापनाकी दृष्टीसे आचारांगकी निर्युक्तिमें यह बात कही गई है कि सब श्रुतांगोंमें आचारांग प्रथम है। यथार्थत: अक्षररचनाकी दृष्टीसे पूर्व ही पहले बनाये गये।

एक आधुनिक मत१ (डॉ. जैकोबी; कल्पसूत्रभूमिका.) यह भी है कि पूर्वोंमें महावीर स्वामीसे पूर्व और उनके समयमें प्रचलित मत-मतान्तरोंका वर्णन किया गया था, इस कारण वे पूर्व कहलाये।

चौदह पूर्वोंके नामोंमें दोनों सम्प्रदायोंमें कोई विशेष भेद नहीं है, केवल ग्यारहवें पूर्वको श्वेताम्बर 'अवंझं' कहते हैं और दिगम्बर 'कल्लाणवाद'। अवंझंका जो अर्थ टीकाकारने अवंध्य अर्थात् 'सफल' बतलाया है वह 'कल्याण' के शब्दार्थके निकट पहुंच जाता है, इससे संभवत: वह उनके विषयभेदका द्योतक नहीं है। छठवें आठवें नवमें और ग्यारहसे चौदहवें तक इस प्रकार सात

पूर्वोंके अन्तर्गत वस्तुओंकी संख्या में दोनों सम्प्रदायोंमें मतभेद है। शेष सात पूर्वोंकी वस्तु-संख्यामें कोई भी भेद नहीं है। श्वेताम्बर मान्यतामें प्रथम चार पूर्वोंकें अन्तर्गत वस्तुओंके अतिरिक्त चूलिकाओंकी संख्या भी दी गई है, और दृष्टिवादके पंचमभेद चूलिकाके वर्णनमें कहा है कि वहां उन्हीं चार पूर्वोंकी चूलिकाओंसे अभिप्राय है। यदि ये चूलिकाएं पूर्वोंके अन्तर्गत थी, तो यह समझमें नहीं आता कि उनका फिर एक स्वतंत्र विभाग क्यों रखा गया। दिगम्बरीय मान्यतामें पूर्वोंके भीतर कोई चूलिकाएं नही गिनायी गई और चूलिका विभागके भीतर जो पांच चूलिकाएं बतलायी हैं उनका प्रथम चार पूर्वोंसे कोई संबंध भी ज्ञात नही होता।

समवायांग और नन्दीसूत्रमें पूर्वोंके अन्तर्गत वस्तुओं और चूलिकाओंकी संख्या-सूचक निम्न तीन गाथाएं पाई जाती है -

दस चोद्दस अट्ठाट्ठारसेव बारस दुवे य वत्थूणि ।
सोलस तीसा वीसा पण्णरस अणुप्पवायंमि ।।१।।
वारस एक्कारसमे वारसमे तेरसेव वत्थूणि ।
तीसा पुण तेरसमे चउदसमे पन्नवीसाओ ।।२।।
चतारी दुवालस अट्ठ चेव दस चेव चूलवत्थूणि ।
आइल्लाण चउण्हं सेसाणं चूलिया णत्थि ।।३।।

धवलामें (वेदनाखंडके आदिमें) पूर्वोंके अन्तर्गत वस्तुओं और वस्तुओंके अन्तर्गत पाहुडोंकी संख्याकी द्योतक निम्न तीन गाथाएं पाई जाती हैं -

दस चौद्दस अट्ठारस (अट्ठट्ठारस) वारस य दोसु पुव्वेसु ।
सोलस वीसं तीसं दसमंमि य पण्णरस वत्थू ।।१।।
एदेसिं पुव्वाणं एवदिओ वत्थुसंगहो भणिदो ।
सेसाणं पुव्वाणं दस दस वत्थू पणिवयामि ।।२।।
एक्केक्कम्हि य वत्थू वीसं वीसं च पाहुडा भणिदा ।
विसम-समा हि य वत्थू सव्वे पुण पाहुडेहि समा ।।३।।

इनके अंक भी धवलामें दिये हुए हैं जिन्हें हम निम्न तालिकाद्वारा अच्छी तरह प्रकट कर सकते हैं।

पूर्व	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	कुल
वत्थू	१०	१४	८	१८	१२	१२	१६	२०	३०	१५	१०	१०	१०	१०	१९५
पाहुड	२००	२८०	१६०	३६०	२४०	२४०	३२०	४००	६००	३००	२००	२००	२००	२००	३९००

सव्व-वत्थु-समासो पंचाणउदिसदमेत्तो १९५ ।

सव्व-पाहुड-समासो ति-सहस्स-णव-सद-मेत्तो ३९००।

जयधवलामें यह भी बतलाया गया है कि एक एक पाहुडके अन्तर्गत पुन: चौवीस चौवीस अनुयोगद्वार थे। यथा -

एदेसु अत्थाहियारेसु एक्केक्कस्स अत्थाहियारस्स वा पाहुडसण्णिदा वीस वीस अत्थाहियारा। तेसिं पि अत्थाहियाराणं एक्केक्कस्स अत्थाहियारस्स चउवीसं चउवीसं अणिओगद्दाराणि सण्णिदा अत्थाहियारा।

इससे स्पष्ट है कि पूर्वोके अन्तर्गत वस्तु अधिकार थे, जिनकी संख्या किसी विशेष नियमसे नहीं निश्चित थी। किन्तु प्रत्येक वस्तुके अवान्तर अधिकार पाहुड कहलाते थे और उनकी संख्या प्रत्येक वस्तुके भीतर नियमत: वीस वीस रहती थी और फिर एक एक विशालता मात्रका द्योतक है क्योंकि उन वत्थुओं और उनके अन्तर्गत पाहुडोंके अब नाम तक भी उपलब्ध नहीं है। पर इन्हीं ३९०० पाहुडोंमेंसे केवल दो पाहुडोंका उध्दार षट्खण्डागम और कसायपाहुड (धवला और जयधवला) में पाया जाता है जैसा कि आगे चलकर बतलाया जायगा। उनसे और उनकी उपलब्ध टीकाओंसे इस साहित्यकी रचनाशैली व कथनोपकथन पध्दतिका बहुत कुछ परिचय मिलता है।

चौदह पूर्वोका विषय और परिमाण

चौदह पूर्वोका विषय और पदसंख्या

१ उत्पादपुव्वं - तत्र च सर्वद्रव्याणां पर्ययाणां

१ उप्पादपुव्वं जीव-कालं-पोग्गलाणमुप्पाद-

चोत्पादभावमंगीकृत्य प्रज्ञापना कृता । वय-धुवत्तं वण्णेइ।
(१००००००००)
(१००००००००)
२ अग्गेणीयं - तत्रापि सर्वेषां द्रव्याणां २ अग्गेणियं अंगाणमग्गं वण्णेइ
अंगाणमग्गं-
पर्ययाणां जीवविशेषाणां चाग्रं परिमाणं पदं वण्णेदि त्ति अग्गेणियं
गुणणामं।
वर्ण्यते। (९६०००००) (९६००००००)
३ वीरियं - तत्राप्यजीवानां जीवानां च ३ वीरियाणुपवादं
अप्पविरियं परविरियं
सकर्मेतराणां वीर्य प्रोच्यते। उभयविरियं खेत्तविरियं
भवविरियं तव-
(७०००००००) विरियं वण्णेइ। (७०००००००)
४ अत्थिणत्थिपवादं - यद्यल्लोके यथास्ति ४ अत्थिणत्थिपवादं
जीवाजीवाणं अत्थिणत्थित्तं यथा वा नास्ति अथवा स्याद्वादाभिप्रायत:
वण्णेदि। (६०००००००)
तदेवास्ति तदेव नास्तीत्येवं प्रवदति।
(६०००००००)
५ णाणपवादं - तस्मिन् मतिज्ञानादिपंच- ५ णाणपवादं पंच णाणाणि तिण्णि
अण्णा-
कस्य भेदप्ररू पणा यस्मात्कृता तस्मात् णाणि वण्णेदि। (९९९९९९९)
ज्ञानप्रवादं। (९९९९९९९)
६ सच्चपवादं - सत्यं संयमं सत्यवचनं वा ६ सच्चपवादं वाग्गुप्ति:
वाक्संस्कारकारण-
तद्यत्र समेदं सप्रतिपक्षं च वर्ण्यते तत्सत्य- प्रयोगो द्वादशधा भाषावक्तारश्च अनेक-
प्रवादम्। (१००००००६) प्रकारं मृषाभिधानं दशप्रकारश्च सत्य-

सद्भावो यत्र निरू पितस्तत्सत्यप्रवादम्।

(१००००००६)

७ आदपवादं - आत्मा अनेकधा यत्र नय-
दर्शनैर्वर्ण्यते तदात्मप्रवादं।

(२६००००००)

७ आदपवादं आदं वण्णेदि वेदेत्ति वा
विण्हु त्ति वा भोत्तेत्ति वा बुध्देत्ति वा
इच्चादिसरू वेण। (२६०००००००)

८ कम्मपवादं - ज्ञानावरणादिकमष्टविधं
कर्म प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशादिभिर्भेदैर
न्यैश्चोत्तरोत्तरभेदैरत्र वर्ण्यते तत्कर्म-
प्रवादम्। (१८००००००)

८ कम्मपवादं अट्ठविहं कम्मं वण्णेदि।

(१८००००००)

९ पच्चक्खाणं - तत्र सर्वं प्रत्याख्यानस्वरू पं
वर्ण्यते। (८४०००००)

९ पच्चक्खाणं दव्व-भाव-परिमियापरि-
मियपच्चक्खाणं उववासविहिं पंच समि-
दीओ तिण्णि गुत्तीओ च परू वेदि।

(८४०००००)

१० विज्जाणुवावं - तत्रानेकेविद्यातिशया
अल्प-
वर्णिता:। (११००००००)

१० विज्जाणुवादं अंगुष्ठप्रसेनादीनां
विद्यानां सप्तशतानि रोहिण्यादीनां
महाविद्यानां पत्र्चशतानि अन्तरिक्ष-
भौमाङ्गस्वर-स्वप्न-लक्षण-व्यंजनछिन्ना
न्यष्टौ महानिमित्तानि च कथयति।

(११००००००)

११ अवंज्झं -वन्ध्यं नाम निष्फलम्, न वन्ध्यम-
तारागणानां
वन्ध्य सफलमित्यथं:। तत्र हि सर्वे
ज्ञानतप: संयमयोगा: शुभफलेन सफला
वर्ण्यन्ते, अप्रशस्ताश्च प्रमादादिका: सर्वे

११ कल्याणं रवि-शशि-नक्षत्र-
चारोपपाद-गति-विपर्ययफलानि शकुन-
व्याहृतमहैद्बलदेव-वासुदेव-चक्रधरा-
दीनां गर्भावतरणादिमहाकल्याणानि च

अशुभफला वर्ण्यन्ते, अत्तोऽवन्ध्यम्। (२६०००००००)	कथयति। (२६०००००००)
१२ पाणावायं - तत्राप्यायु:प्राणविधानं सर्वं कायचिकित्साद्यष्टांगमायुर्वेदं सभेदमन्ये च प्राणा वर्णिता:। (१५६०००००)	१२ पाणावायं भूतिकर्म जांगुलिप्रक्रमं प्राणापानविभागं च विस्तरेण कथयति। (१३०००००००)
१३ किरियाविसालं - तत्र कायिक्यादय: क्रिया द्वासप्तति-विशाल त्ति सभेदा: संयमक्रिया छन्द-क्रियाविधानानि च वर्ण्यन्ते। (९०००००००)	१३ किरियाविसालं लेखादिका: कला: स्त्रैणांश्चतु:षष्ठिगुणान् शिल्पानि काव्यगुणदोषक्रियां छन्दोविचितिक्रियां च कथयति। (९०००००००)
१४ लोकबिंदुसारं - तच्चास्मिन् लोके श्रुत-चत्वारि लोके वा बिन्दुरिवाक्षरस्य सर्वोत्तममिति, सर्वाक्षरसन्निपातप्रतिष्ठितत्वेन च लोक-बिंदुसारं भणितम्। (१२५००००००)	१४ लोकबिंदुसारं अष्टौ व्यवहारान् बीजानि मोक्षगमनक्रिया: मोक्षसुखं च कथयति। (१२५००००००)

पूर्वोंके अन्तर्गत विषयोंकी सूचना समवायांग व नन्दीसूत्रोंमें नहीं पायी जाती, वहां केवल नाम ही दिये गये हैं। विषयकी सूचना उनकी टीकाओंमें पायी जाती है। उपर्युक्त श्वेताम्बर मान्यताका विषय समवायांग टीकासे दिया गया है। उसपरसे ऐसा ज्ञात होता है कि वहां विषयका अंदाज बहुत कुछ नामकी व्युत्पत्ति द्वारा लगाया गया है। धवलान्तर्गत विषयसूचना कुछ विशेष है। पर विषयनिर्देशमें शब्दभेदको छोड कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं है। अवन्ध्य और कल्याणवादमें जो नामभेद है, उसी प्रकार विषयसूचनामें भी कुछ विशेष है। धवलामें उसके अन्तर्गत फलित ज्योतिष और शकुनशास्त्रका स्पष्ट उल्लेख है जो अवन्ध्यके विषयमें नहीं पाया जाता। उसी प्रकार बारहवें प्राणावाय पूर्वके भीतर धवलामें कायचिकित्सादि अष्टांगायुर्वेदकी सूचना स्पष्ट दी गई है, वैसी समवायांग टीकामें नहीं पायी जाती। वहाँ केवल 'आयुपाणविधान' कहकर छोड

दिया गया है। तेरहवें क्रियाविशालमें भी धवलामें स्पष्ट कहा है कि उसकेअन्तर्गत लेखादि बहत्तर कलाओं, चौसठ स्त्री कलाओं और शिल्पोंका भी वर्णन है। यह समवायांग टीकामें नहीं पाया जाता।

पदप्रमाण दोनों मान्यताओंमें तेरह पूर्वोंका तो ठीक एकसा ही पाया जाता है, केवल बारहवें पूर्व पाणावायकी पदसंख्या दोनोंमें भिन्न पाई जाती हैं। धवलाके अनुसार उसका पदप्रमाण तेरह कोटि है जब कि समवायांग और नन्दीसूत्रकी टीकाओंमें एक कोटि छप्पन लाख (एक कोटी षट्पञ्चाशच्च पदलक्षाणि) पाया जाता है।

प्रथम नौ पूर्वोंका विषय तो अध्यात्मविद्या और नीति-सदाचारसे संबंध रखता है किन्तु आगेकेविद्यानुवादादि पांच पूर्वोंमें मंत्र-तंत्र व कलाकौशल शिल्प आदि लौकिक विद्याओंका वर्णन था, ऐसा प्रतीत होता है। इसी विशेष भेदको लेकर दशपूर्वी और चौदहपूर्वी का अलग अलग उल्लेख पाया जाता हैं। धवलाकेवेदनाखंडकेआदिमें जो मंगलाचरण है वह स्वयं इन्द्रभूति गौतम गणधरकृत और महाकम्मपयडिपाहुडकेआदिमें उनकेद्वारा निबध्द कहा गया है वहींसे उठाकर उसे भूतबलि आचार्यने जैसाका तैसा वेदनाखंडकेआदिमें रख दिया है, ऐसी धवलाकारकी सूचना हैं। इस मंगलाचरणमें ४४ नमस्कारात्मक सूत्र या पद है। इनमें बारहवें और तेरहवें सूत्रोंमें क्रमसे दशपूर्वियों और चौदह पूर्वियोंको अलग अलग नमस्कार किया गया है, जिसके रहस्यका उद्‌घाटन धवलाकारने इस प्रकार किया है-

णमो दसपुव्वियाणं ।।१२।।

एत्थ दसपुव्विणो भिण्णाभिण्णभेएण दुविहा होंति। तत्थ एक्कारसंगाणि पढिऊण पुणो परियम्मसुत्तपढमाणियोग- पुव्वगयचूलिया त्ति पंचहियारणिबध्ददिट्ठिवादे पढिज्जमाणे उप्पायपुव्वमादिं कादूण पढंताणं दसपुव्वीविज्जापवादे समत्ते रोहिणी-आदिपंचसयमहाविज्जाई अंगुट्ठपसेणा-दिसत्तसयदहरविज्जाहि अणुगयाओ किं भयवं आणवेवत्ति ढुक्कंति। एवं ढुक्काणं सव्वविज्जाणं जो लोभो गच्छदि सो भिण्णदसपुव्वी। जो पुण ण तासु लोभं करेदि कम्मक्खयत्थी होंतो सो अभिण्णदसपुव्वी णाम। तत्थ अभिण्णदसपुव्वीजिणाणं णमोक्कारं करेमि त्ति उत्तं होदि। भिण्णदसपुव्वीणं कथं पडिणिवित्ती ? जिणसद्दाणुववत्तीदो, ण च तेसिं जिणत्तमत्थि, भग्गमहव्वएसु जिणत्ताणुववत्तीदो।

णमो चोद्दसपुव्वियाणं ।।१३।।

जिणाणमिदि एत्थाणुवट्टदे। सयलसुदणाणधारिणो चोद्दसपुव्विणो, तेसिं चोद्दसपुव्वीणं जिणाणं णमो इदि उत्तं होदि। सेसहेट्ठिमपुव्वीणं णमोक्कारो किण्ण कदो? ण, तेसिं पि कदो चेव तेहिं विणा चोद्दसपुव्वाणुववत्तीदो। चोद्दसपुव्वस्सेव णामंणिद्देसं कादूण किमट्ठं णमोक्कारो कीरदे? विज्जाणुपवादस्स समतीए इव चोद्दसपुव्वसमत्तीए वि जिणवयण-पचयदंसणादो। चोद्दसपुव्वसमत्तीए को पच्चओ? चोद्दसपुव्वाणि समाणिय रत्तिं काउस्सग्गेण ट्ठिदस्स पहादसमए भवणवासियवाणवेंतरजोदिसियकप्पवासियदेवेहि कयमहापूजा संखकाहलातूररवसंकुला। होदु एदेसु दोसु ट्ठाणेसु जिणवयणपच्चओवलंभो, जिणवयणत्तं पडि सव्वंगपुव्वाणि समाणाणि त्ति तेसिं सव्वेसिं णामणिद्देसं काऊण णमोक्कारो किण्ण कदो? ण, जिणवयणत्तणेण सव्वंगपुव्वंम्हि सरिसत्ते संते वि विज्जाणुप्पवादलोगबिंदुसाराणं महल्लत्तमत्थि, एत्थेव देवपूजोवलंभादो। चोद्दसपुव्वहरो मिच्छत्तं ण गच्छदि तम्हि भवे असंजमं च ण पडिवज्जदि, एसो एदस्स विसेसो।

यहां धवलाकारने दशपूर्वियों और चौदहपूर्वियोंको अलग अलग नामनिर्देशपूर्वक नमस्कार किये जानेका कारण यह बतलाया है, कि जब श्रुतपाठी आचारांगादि ग्यारह श्रुतोंको पढ चुकता है और दृष्टिवादके पांच अधिकारोंका पाठ करते समय क्रमसे उत्पादादि पूर्व पढता हुआ दशम पूर्व विद्यानुवादको समाप्त कर चुकता है, तब उससे रोहिणी आदि पांच सौ महाविद्याएं और अंगुष्ठप्रसेणादि सात सौ अल्प विद्याएं आकर पूछती है ‘हे भगवन, क्या आज्ञा है’? इस प्रकार सब विद्याओंके प्राप्त हो जानेपर जो लोभमें पड जाता है वह तो भिन्नदशपूर्वी कहलाता है, और जो उनके लोभमें न पडकर कर्मक्षयार्थी बना रहता है वह अभिन्नवशपूर्वी होता है। ये अभिन्नदशपूर्वी ही ‘जिन’ संज्ञाको प्राप्त करते है और उन्हींको यहां नमस्कार किया गया है। किन्तु जो महाव्रतोंका भंग कर देनेसे जिनसंज्ञाको प्राप्त नहीं कर पाते उन्हें यहां नमस्कार नहीं किया गया

आगे यह प्रश्न उठाया गया है कि जब दश और चौदह पूर्वियोंको अलग अलग नमस्कार किया तब बीचके ग्यारहपूर्वी, बारहपूर्वी और तेरहपूर्वियों को भी क्यों नहीं पृथक् नमस्कार किया।

इसका उत्तर दिया गया है कि उनको नमस्कार तो चौदहपूर्वियोंके नमस्कारमें आ ही जाता है, पर जैसा जिनवचनप्रत्यय विद्यानुवादकी समाप्तिके समय देखा जाता है वैसा ही चौदहपूर्वोकी समाप्तिपर पाया जाता है। जब चौदहपूर्वोंको समाप्त करके रात्रिमें श्रुतकेवली कायोत्सर्गसे विराजमान रहते हैं तब प्रभातसमय भवनवासी, बाणव्यंतर, ज्योतिषी और कल्पवासी देव आकर उनकी शंखतूर्यके साथ महापूजा करते हैं। इसप्रकार यद्यपि जिनवचनत्वकी अपेक्षासे सभी पूर्व समान हैं, तथापि विद्यानुप्रवाद और लोकबिन्दुसारका महत्व विशेष है, क्योंकि यहीं देवोंद्वारा पूजा प्राप्त होती है। दोनों अवस्थाओंमें विशेषता केवल इतनी है कि चतुर्दशपूर्वधारी फिर मिथ्यात्वमें नहीं जा सकता और उस भवमें असंयमको भी प्राप्त नहीं होता।

इससे जाना जाता है कि श्रुतपाठियोंकी विद्या एक प्रकारसे दशम पूर्वपर ही समाप्त हो जाती थी, वहीं वह देवपूजाको भी प्राप्त कर लेता था और यदि लोभमें आकर पथभ्रष्ट न हुआ तो 'जिन' संज्ञाका भी अधिकारी रहता था। इससे दिगम्बर सम्प्रदायमें दृष्टिवादके प्रथमानुयोग नामक विभागको पूर्वगतसे पहले रखने की सार्थकता भी सिध्द हो जाती है। यदि पूर्वगतके पश्चात् प्रथमानुयोग रहा तो उसका तात्पर्य यह होगा कि दशपूर्वियोंको उसका ज्ञान ही नहीं हो पायेगा ' अतएव इस दशपूर्वीकी मान्यताके अनुसार प्रथमानुयोगको पूर्वोंसे पहले रखना बहुत सार्थक हैं। आगेके शेष पूर्व और चूलिकाएं लौकिक और चमत्कारिक विद्याओंसे ही संबंध रखती हैं, वे आत्मशुध्दि बढानेमें उतनी कार्यकारी नहीं है, जितनी उसकी दृढताकी परीक्षा करानेमें हैं।

भिन्न और अभिन्न दशपूर्वीकी मान्यताका निर्देश नंदूसूत्रमें भी है, यथा-

'इच्चेअं दुवालसंगं गणिपिडगं चोद्दसपुव्विस्स सम्मसुअं अभिण्णदसपुव्विस्स सम्मसुअं तेण परं भिण्णेसु भयणा से तं सम्मसुअं' (सू. ४१)

टीकाकारने भिन्न और अभिन्न दशपूर्वीका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है -

'इत्येतद् द्वादशांग गणिपिटकं यश्चतुर्दशपूर्वी तस्य सकलमपि सामायिकादि बिन्दुसार पर्यवसानं नियमात् सम्यक् श्रुतं। ततो अधोमुखपरिहान्या नियमतः सर्व सम्यक् श्रुतं तावद् वक्तव्यं यावदभिन्नदशपूर्विणः-सम्पूर्णदशपूर्वधरस्य। सम्पूर्णदशपूर्वधरत्वादिकं हि नियमतः सम्यग्दृष्टेरेव, न मिथ्यादृष्टेः तथा स्वाभाव्यात्। तथाहि, यथा अभव्यो ग्रंथिदेशमु-पागतोऽपि तथास्वभावत्त्वा न ग्रंथिभेदमाधातुमलम्, एवं मिथ्यादृष्टिरपि श्रुतमवगाहमानः प्रकर्षतोऽपि तावद-वगाहते यावत्किञ्चिन्यूनानि दशपूर्वाणि भवन्ति, परिपूर्णानि तु तानि नावगाढुं शक्नोति तथा स्वभावत्वादिति।' इत्यादि

इसका तात्पर्य यह है कि जो सम्यग्दृष्टि होता है वह तो दशपूर्वोंका अध्ययन कर लेता है और आगे भी बढता जाता है, किन्तु जो मिथ्यादृष्टि होता है वह कुछ कम दशपूर्वोंतक तो पढता जाता है, किन्तु वह दशमें को भी पूरा नहीं कर पाता। इसका उदाहरण उन्होंने एक अभव्यका दिया है जो किसी ग्रंथि-देशपर आजानेसे उस ग्रंथिका भेदन नहीं कर पाता। पर टीकाकारने यह नहीं बतलाया कि कुछ कम दशवें पूर्वमें श्रुतपाठी कौनसी ग्रंथि पाकर रुक जाता है और उसको भेदन क्यों नहीं कर पाता।

अनुयोगके दो भेद

१ मूलपढमाणुओग
२ गंणिआणुओग

मूल प्रथमानुयोगका विषय

अरहंताणं भगवंताणं पुव्वभवा देवगमणाइं
आउंचवणाइं जम्मणाइं अभिसेआ रायवर-

प्रथमानुयोगका विषय

पढमाणिओए चउवीस अत्थाहियारा
तित्थयर-पुराणेसु सव्वपुराणाणमंतब्भावादो

(जयधवला) पढमाणियोगो पंच-सहस्सपदेहि
(५०००) पुराणं वण्णेदि। उत्तं च -
वारसविहं पुराणं जं दिट्ठं जिणवरेहि

सिरीओ पव्वज्जाओ तवा य उग्गा केवलणा-
रायवंसे
णुप्पयाओ तित्थपवत्तणाणि सीसा गणा गणहरा
अज्जपवत्तिणीओ संघस्स चउव्विहस्स जं च
चउ-
परिमाणं जिण मण पज्जव आहिनाणी सम्मत्त
सुअनाणिणो वाई अणुत्तरगई उत्तरवेउव्विण्णो
सत्तमओ
मुणिणो जत्तिआ सिध्दा सिध्दीवहो जहदेसिओ
।।३।। णवमो
जच्चिरं च कालं पाओवगया जे जेहिं
बोध्दव्वो।
जात्तियाइं भत्ताइं छेइत्ता अंतगडे मुणिवरुत्तमे
।।४।।
तमरओघविप्पमुक्केमुक्खसुहमणुत्तरं च पत्ते
एवमन्ने अ एवमाइभावा मूलपढमाणूओगे
कहिआ।

गंडिआणुओग

गंडिआणुओगे कुलगर-तित्थयर-चक्कवट्टि-
दसार-बलदेव-वासुदेव-गणधर-भद्दवाहु-तवो-
क्कम-हरिवंस-उस्सप्पिणी-चित्तंतर-अमर-नर-
तिरिय-निरय-गइग-मण-विहियपरियट्टणेसु
एवमाइआओ गंडिआओ आघविज्जंति
पण्णविज्जंति।

सव्वेहिं। तं सव्वं वण्णेदि हु जिणवंसे
य ।।१।। पढमो अरहंताणं विदियो पुण
चक्कवट्टिवंसो दु। विज्जाहराण तदियो
त्थओ वासुदेवाणं ।।२।। चारणवंसो तह
पंचमो दु छट्ठी य पण्णसमणाणं।
कुरुवंसो अट्ठमओ तह य हरिवंसो
य इक्खयाणं दसमो वि य कासियाणं
वाईणेक्कारसमो बारसमो णाहवंसो दु

श्वेताम्बर सम्प्रदायमें दृष्टिवादके चौथे भेदका नाम अणुयोग है जिसके पुन:दो प्रभे होते हैं, मूलप्रथमानुयोग और गंडिकानुयोग। दिगम्बर सम्प्रदायमें प्रथमानुयोग ही दृष्टिवादका तीसरा भेद है। अनुयोगका अर्थ समवायांग टीकामें इस प्रकार दिया है -

अनुरू पोऽनुकूलो वा योगोऽनुयोग: सूत्रस्य निजेनाभिधेयेन सार्ध्दमनुरू प: सम्बन्ध इत्यर्थ:।

अर्थात् - सूत्रद्वारा प्रतिपादित अर्थके अनुकूल संबंधका नाम ही अनुयोग है। तात्पर्य यह कि जिसमें सूत्र कथित सिध्दांत या नियमोंके अनुकूल दृष्टान्त और उदाहरण पाये जावें वह अनुयोग है। उसके दो भेद करनेका अभिप्राय नंदीसूत्रकी टीकामें यह बतलाया गया है कि -

इह मूलं धर्मप्रणयनात् तीर्थकरास्तेषां प्रथम: सम्यक्त्वाप्तिलक्षणपूर्वभवादिगोचरोऽनु-योगो मूलप्रथमानुयोग:। इक्ष्वादीनां पूर्वापरपर्वपरिच्छिन्नो मध्यभागो गण्डिका, गण्डिकेव गण्डिका, एकार्थाधिकारा ग्रंथपध्दतिरित्यर्थ:। तस्या अनुयोगो गण्डिकानुयोग:।

इसका अभिप्राय यह है कि धर्मके प्रवर्तक होनेसे तीर्थंकर ही मूल पुरुष है, अतएव उनका प्रथम अर्थात् सम्यक्त्वप्राप्तिलक्षण पूर्वभव आदिका वर्णन करनेवाला अनुयोग मूलप्रथमानुयोग है। और जैसे गन्ने आदिकी गंडेरी आजूबाजूकी गांठोंसे सीमित रहती है ऐसे ही जिसमें एक एक अधिकार अलग अलग हो उसे गंडिकानुयोग कहते है, जैसे कुलकरगंडिका आदि। किन्तु यह विभाग कोई विशेष महत्व नहीं रखता क्योंकि दोनोंमें विषयकी पुनरावृत्ति पायी जाती है। जैसे तीर्थंकर और उनके गणधरोंका वर्णन दोनों विभागोंमें आता है। दिगम्बरोंमें ऐसा कोई विभाग नहीं किया गया और साफ सीधे तौरसे बतलाया गया है कि दृष्टिवादके प्रथमानुयोगमें चौवीस अधिकारोंद्वारा बारह जिनवंशों और राजवंशोंका वर्णन किया गया है।

दिगम्बर सम्प्रदायमें प्रथमानुयोगका अर्थ इस प्रकार किया गया है -

प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगोऽधिकार: प्रथमानुयोग: ।

(गोम्मटसार टीका)

इसका अभिप्राय यह है कि 'प्रथमं' का तात्पर्य अव्रती और अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टि शिष्यसे है और उसके लिये जिस अनुयोग की प्रवृत्ति होती है वह प्रथमानुयोग कहलाती है। इसीके भीतर सब पुराणोंका अन्तर्भाव हो जाता है। किन्तु इसका पद-प्रमाण केवल पांच हजार बतलाया गया है। इससे जान पडता है कि दृष्टिवादके अन्तर्गत प्रथमानुयोगमें सर्व कथावर्णन बहुत संक्षेपमें किया गया था। पुराणवादका विस्तार पीछे पीछे किया गया होगा।

नन्दिसूत्रकी टीकामें गंडिकानुयोगके अन्तर्गत चित्रान्तरगण्डिकाका बडा ही विचित्र और विस्तृत परिचय दिया है। पहले उन्होंने बतलाया है कि -

'कुलकराणां गण्डिका: कुलकरगण्डिका:, तत्र कुलकराणां विमलवाहनादीनां पूर्वभवजन्मादीनि सप्रपञ्चमु-पवर्ण्यन्ते। एवं तीर्थकरगण्डिकादिष्वभिधानवशतो भावनीयं 'जाव चित्तंतरगंडिआउ' त्ति ।

अर्थात् कुलकरगण्डिकामें विमलवाहनादि कुलकरोंके पूर्वभव जन्मादिका सविस्तर वर्णन किया गया है। इसी प्रकार तीर्थंकरादि गंडिकाओंमें उनके नामानुसार विषय वर्णन समझ लेना चाहिये जहांतक कि चित्रान्तरगंडिका नहीं आती। फिर चित्रान्तरगण्डिकाका परिचय इस प्रकार प्रारम्भ किया गया है -

चित्रा अनेकार्था:, अन्तरे ऋषभाजिततीर्थकरापान्तराले गण्डिका: चित्रान्तरगण्डिका:। एतदुक्तं भवति-ऋषभा-जित-तीर्थकरान्तराले ऋषभवंशसमुद्भूतभूपतीनां शेषगतिगमनव्युदासेन

शिवगतिगमनानुत्तरोपपातप्राप्तिप्रतिपादिका गण्डिकाश्चित्रान्तरगण्डिका:। तासां च प्ररू पणा पूर्वाचारैरेवमकारि-इह सुबुध्दिनामा सगरचक्रवर्तिनो महामात्योऽष्टा-पदपर्वते सगरचक्रवर्तिसुतेभ्य आदित्ययश: प्रभृतीनां भगवदृषभवंशजानां भूपतीनामेवं संख्यामाख्यातु-मपक्रमते स्म। आह च -

“ आइच्चजसाईणं उसभस्स परंपरानरवईणं ।
सयरसुयाण सुबुध्दी इणमो संखं परिकहेइ ।।१।। ”

आदित्ययश:प्रभृतयो भगवन्नाभेयवंशजास्त्रिखण्डभरतार्द्धमनुपाल्य पर्यन्ते पारमेश्वरी दीक्षामभिगृह्य तत्प्रभावत: सकलकर्मक्षयं कृत्वा चतुर्दश लक्षा निरन्तरं सिध्दिमगमन्। तत एक: सर्वार्थसिद्धौ, ततो भूयोऽपि चतुर्दश लक्षा निरन्तरं निर्वाणे, ततोऽप्येक: सर्वार्थसिध्दे महाविमाने । एवं चतुर्दशलक्षान्तरित: सर्वार्थसिध्दावेवैक्रस्तावद्वक्तव्यो यावत्तेऽप्येकका असंख्येया भवन्ति । ततो भूयश्चतुर्दश लक्षा नरपतीनां निरन्तरं निर्वाणे, ततो द्वौ सर्वार्थसिध्दे । तत: पुनरपि चतुर्दश लक्षा निरन्तरं निर्वाणे । ततो भूयोऽपि द्वौ सर्वार्थसिध्दे । एवं चतुर्दश लक्षा २ लक्षान्तरितौ द्वौ २ सर्वार्थसिध्दे तावद्वक्तव्यौ यावत्तेऽपि द्विक २ संख्यया असंख्येया भवन्ति । एवं त्रिक २ संख्यादयोऽपि प्रत्येकमसंख्येयास्तावद्वक्तव्या: यावन्निरन्तरं चतुर्दश लक्षा निर्वाणे। तत: पत्र्चाशत्सर्वार्थसिध्दे । ततो भूयोऽपि चतुर्दश लक्षा निर्वाणे । तत: पुनरपि पत्र्चाशत्सर्वार्थसिध्दे। ततो भूयोऽपि चतुर्दश लक्षा निर्वाणे ̍ तत: पुनरपि पत्र्चाशत्सर्वार्थसिद्धे ̍ एवं पत्र्चाशत्ससंख्याका अपि चतुर्दश २ लक्षान्तरितास्तावद्वक्तव्या यावत्तेऽप्यसंख्येया भवन्ति उक्तं च -

“ चोद्दस लक्खा सिध्दा णिवईणेक्को य होइ सवट्ठे ।
एवेक्केक्के ठाणे पुरिसजुगा होंतिऽसंख्येज्जा ।। १ ।।
पुणरपि चोद्दस लक्खा सिध्दा निव्वईण दो वि सव्वट्ठे ।
दुगठाणेऽवि असंखा पुरिसजुगा होंति नायव्वा ।। २ ।।
जाव य लक्खा चोद्दस सिध्दा पण्णास होंति सव्वट्ठे ।
पन्नासट्ठाणे वि उ पुरिसजुगा होंतिऽसंखेज्जा ।। ३ ।।

एगुत्तरा उ ठाणा सव्वट्ठे चेव जाव पन्नासा ।
एक्केक्कंतरठाणे पुरिसजुगा होंति असंखेज्जा ।। ४ ।।
इत्यादि

इसका तात्पर्य यह है कि ऋषभ और अजित तीर्थंकरोंके अन्तराल कालमें ऋषभ वंशके जो राजा हुए उनकी और गतियोंको छोडकर केवल शिवगति और अनुत्तरोपपातकी प्राप्तिका प्रतिपादन करनेवाली गंडिका चित्रान्तगंडिका कहलाती है। इसका पूर्वाचार्योंने ऐसा प्ररूपण किया है कि सगरचक्रवर्तीके सुबुध्दिनामक महामात्यने अष्टापद पर्वतपर सगरचक्रीके पुत्रोंको भगवान् ऋषभके वंशज आदित्ययश आदि राजाओंकी संख्या इस प्रकार बताई - उक्त आदित्ययश आदि नाभेयवंशके राजा त्रिखंड भरतार्धका पालन करके अन्त समय पारमेश्वरी दीक्षा धारण कर उसके प्रभावसे सब कर्मोंका क्षय करके चौदह लाख निरन्तर क्रमसे सिध्दीको प्राप्त हुए और अनन्तर एक सर्वार्थसिध्दीको गया। फिर चौदह लाख निरन्तर मोक्षको गये और पश्चात् एक फिर सर्वार्थसिध्दीको गया। इसी प्रकार क्रमसे वे मोक्ष और सर्वार्थसिध्दिको तबतक जाते रहे जबतक कि सर्वार्थसिध्दिमें एक एक करके असंख्य हो गये। इसके पश्चात् पुन: निरंतर चौदह चौदह लाख मोक्षको और दो दो सर्वार्थसिध्दिको तबतक गये जबतक कि ये दो दो भी सर्वार्थसिध्दिमें असंख्य हो गये। इसी प्रकार क्रमसे फिर चौदह लाख मोक्षगामियोंके अनन्तर तीन तीन, फिर चार चार करके पचास पचास तक सर्वार्थसिध्दिको गये और सभी असंख्य होते गये। इसके पश्चात् क्रम बदल गया और चौदह लाख सर्वार्थसिद्धिको जाने के पश्चात् एक एक मोक्षको जाने लगा और पूर्वोक्त प्रकारसे दो दो फिर तीन तीन करके पचास तक गये और सब असंख्य होते गये। फिर दो लाख निर्वाणको, फिर दो लाख सर्वार्थसिध्दिको फिर तीन तीन लाख। इस प्रकारसे दोनों ओर यह संख्या भी असंख्य तक पहुंच गई। यह सब चित्रान्तरगंडिकामें दिखाया गया था। उसके आगे चार प्रकारकी और चित्रान्तरगंडिकायें थी-एकादिका एकोत्तरा, एकादिका द्व्युत्तरा, एकादिका त्र्युत्तरा और त्र्यादिका द्व्यादिविषयोत्तरा, जिनमें भी और और प्रकारसे मोक्ष और सर्वार्थसिध्दिको जानेवालोंकी संख्याएं बताई गई थी।

जान पडता है, इन सब संख्याओंका उपयोग अनुयोगके विषयकी अपेक्षा गणितकी भिन्न भिन्न धाराओंकें
समझानेमें ही अधिक होता होगा।

चूलिका	पांच चूलिकाओंके अन्तर्गत विषय
प्रथम चार पूर्वोंकी चूलिकाएं ही इसके अन्तर्गत हैं । उन चूलिकाओंकी संख्या ४+१२+८+१०=३४ है	१ जलगया - जलगमण-जलत्थंमण-कारण-मंत तंत - तपच्छरणाणि वण्णेदि । २ थलगया - भूमिगमणकारण-मंत-तंत-तवच्छरणाणि वत्थुविज्जं भूमिसंवंधमण्णंपि सुहासुहकारणं वण्णेदी । ३ मायागया - इंदजालं वण्णेदि। ४ रू वगया - सीह-हय-हरिणादि-रू वायारेण परिणमणहेदु-मंत-तंत-तवच्छरणाणि चित्त-कट्ठ-लेप्प-लेणकम्मादि-लक्खणं च वण्णेदि। ५ आयासगया - आगासगमणणिमित्त-मंत-तंत-तवच्छरणाणि वण्णेदि।

श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें यद्यपि चूलिका नामका दृष्टिवादका पांचवा भेद गिना गया है, किन्तु उसकेभीतर न तो कोई ग्रंथ बताये गये और न कोई विषय, केव्रल इतना कह दिया गया है कि -

से किंतं चूलिआओ? चूलिआओ आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं चूलिआ, सेसाइं पुव्वाइं अचूलिआइं, से तं चूलिआओ।

अर्थात् प्रथम चार पूर्वोंकी जो चूलिकाएं बता आये हैं वे ही चूलिकाएं यहां गिन लेना चाहिये। किन्तु, यदि ऐसा है तो चूलिकाको पूर्वोंका ही भेद रखना था, दृष्टिवादका एक अलग भेद बताकर उसका एक दूसरे भेदके अन्तर्गत निर्देश करनेसे क्या विशेषता आई? फिर भी टीकाकार यह तो स्पष्ट बतलाते हैं कि दृष्टिवादका जो विषय परिकर्म, सूत्र, पूर्व और अनुयोगमें अनुक्त रहा वह चूलिकाओंमें संग्रह किया गया -

इह चूला शिखरमुच्यते, यथा मेरौ चूला। तत्र चूला इव चूला। दृष्टिवादे परिकर्म सूत्र-पूर्वानुयोगेऽनुक्तार्थसंग्रहपरा ग्रन्थपध्दतय:। x x x एताश्च सर्वस्यापि दृष्टिवादस्योपरि किल स्थापितास्तथैव च पट्यन्ते।

(नन्दीसूत्र टीका)

इससे तो जान पडता है कि उन्हें पूर्वोंके भीतर बतलानेमें कुछ गडबडी हुई है।

दिगम्बर मान्यतामें पूर्वोंके भीतर कोई चूलिकाएं नहीं दिखाई गई। उसके जो पांच प्रभेद बतलाये गये हैं उनका प्रथम चार पूर्वोंसे विषयका भी कोई सम्बंध नहीं है। वे जल, थल, माया, रू प और आकाश सम्बंधी इन्द्रजाल और मंत्र-तंत्रात्मक चमत्कारका प्ररुपण करती हैं, तथा अन्तिम पांच पूर्वोंके मंत्र-तंत्रात्मक विषयकी धाराको लिए हुए हैं। प्रत्येक चूलिकाकी पदसंख्या २०९८९२०० बतलाई है, जिससे उनके भारी विस्तारका पता चलता है।

अब यहां पूर्वोंके उन अंशोंका विशेष परिचय कराया जाता है जो धवला जयधवलाके भीतर ग्रथित है और जिनकी तुलनाकी कोई सामग्री श्वेताम्बरीय उपर्युक्त आगमोंमें नहीं पायी जाती। इनकी रचना आदिका इतिहास सत्प्ररू पणा प्रथम जिल्दकी भूमिकामें दिया जा चुका है जिसका सारांश यह है कि भगवान् महावीरके पश्चात् क्रमश: अट्ठाईस आचार्य हुए जिनका श्रुतज्ञान धीरे धीरे कम होता गया। ऐसे समयमें दो भिन्न भिन्न आचार्योंने दो भिन्न भिन्न पूर्वोंके अन्तर्गत एक एक पाहुडका उध्दार किया। धरसेनाचार्यने पुष्पदंत और भूतबलिको जो पढाया उसपरसे उन्होंने

द्वितीय पूर्व आग्रायणीके एक पाहुडका उध्दार सूत्ररू पसे किया। आग्रायणीपूर्वके अन्तर्गत निम्न चौदह 'वस्तु' नामक अधिकार थे-पुव्वंत, अवरंत, धुव, अधुव, चयणलध्दी, अद्धुवम, पणिधिकप्प, अट्ठ, भौम्म, वयादिय, सव्वट्ठ, कप्पणिज्जाण, अतीद-सिध्द-बध्द और अणागय-सिध्द-बध्द।

हम ऊपर बतला ही आये हैं कि पूर्वोकी प्रत्येक वस्तुमें नियमसे वीस वीस पाहुड रहते थे। अग्रायणी पूर्वकी पंचम वस्तु चयनलब्धिके वीस पाहुडोंमें चौथे पाहुडका नाम कम्मपयडी या महाकम्मपयडी अथवा वेयणकसिणपाहुड१ (कम्माणं पयडिसरुवं वण्णेदि, तेण कम्मपयडिपाहुडे त्ति गुणणामं। वेयणकसिणपाहुडें त्ति वि तस्स विदियं णाममत्थि। वेयणा कम्माणमुदयो तं कसिणं णिरवसेसं वण्णेदि अदो वेयणकसिणपाहुडमिदि एदमवि गुणणाममेव सं. प. १, पृ. १२४, १२५) था। इसीका उध्दार पुष्पदंत और भूतबलीने सूत्ररू पसे षट्खण्डागमके भीतर किया । इस पाहुडके जो चौवीस अवान्तर अधिकार थे, उनके विषयका संक्षेप परिचय धवलाकारने वेदनाखण्डके आदिमें कराया है जो इस प्रकार है---

१ कदि-कदीए ओरलिय-वेउव्विय-तेजाहार-कम्मइयसरीराणं संघादण-परिसादणकदी-ओ भव-पढमापढम-चरिमम्मि ट्ठिदजीवाणं कदिणोकदि-अवत्तव्वसंखाओ च परू वि-ज्जंति।	१ कृति-कृति अर्थाधिकारमें औदारिक, वैक्रियिक, तैजस, आहारक और कार्मण, इन पाचों शरीरोंकी संघातन और परिशातनरू प कृतिका तथा भवके प्रथम, अप्रथम और चरम समयमें स्थित जीवोंके कृति, नोकृति और अवक्तव्यरू प संख्याओंका वर्णन है।
२ वेदणा-वेदणाए कम्म-पोग्गलाणं वेदणा-सण्णिदाणं वेदण-णिक्खेवादि-सोलसेहि	२ वेदना- वेदना अर्थाधिकारमें वेदना-संज्ञिक कर्मपुद्गलोंका वेदनानिक्षेप आदि

अणिओगद्दारेहि परूवणा कारदे।

सोलह अधिकारोंकेद्वारा वर्णन किया गया है।

३ फास - फासणिओगद्दारम्मि कम्म-पोग्ग-गुणके लाणं णाणावरणादिभेएण अट्ठभेदमुवग-याणं फासगुणसंबंधेण पत्त-फासणीमाण-फासणिक्खेवादिसोलसेहि अणियोगद्दारेहि परूवणा कीरदे ।

३ स्पर्श- स्पर्श अर्थाधिकारमें स्पर्श संबन्धसे प्राप्त हुए स्पर्शनिर्माण, स्पर्श-निक्षेप आदि सोलह अधिकारोंकेद्वारा ज्ञानावरणादिकेभेदसे आठ भेदको प्राप्त हुए कर्मपुद्‌गलोंका वर्णन किया गया है।

४ कम्म- कम्मेत्ति अणिओगद्दारे पोग्गलाणं णाणावरणादिकम्मकरणक्खमत्तणेण पत्त-कम्मसण्णाणं कम्मणिक्खेवादिसोलसेहि अणियोगद्दारेहि परूवणा कीरदे।

४ कर्म- कर्म अर्थाधिकारमें कर्मनिक्षेप आदि सोलह अधिकारोंकेद्वारा ज्ञाना-वरणादि कर्मकरणमें समर्थ होनेसे जिन्हें कर्मसंज्ञा प्राप्त हो गई है, ऐसे पुद्‌गलोंका वर्णन किया गया है।

५ पयडि- पयडि त्ति अणियोगद्दारम्हि पोग्ग-लाणं कदिम्हि परूविद-संघादाणं वेदणाए वेदना पण्णविदावत्थाविसेस-पच्चयादीणं फासम्मि णिरूविद-वावाराणं पयडिणिक्खेवादि-जीवसे सोलस-अणियोगद्दारेहि सहाव-परूवणा कीरदे।

५ प्रकृति- प्रकृति अर्थाधिकारमें कृति अधिकारमें कहे गये संघातनरूप, अधिकारमें कहे गये अवस्थाविशेष प्रत्ययादिरूप, स्पर्शमें कहे गये संबध्द और जीवकेसाथ संबध्द होनेसे उत्पन्न हुए गुणकेद्वारा कर्म अधिकारमें कथित रूपसे व्यापार करनेवाले पुद्‌गलोंकेस्वभाव का निरूपण प्रकृति-

निक्षेप आदि सोलह अधिकारोंकेद्वारा किया गया है।

६ बंधण- जं तं बंधणं तं चउव्विहं-बंधो बंधगा बंधणिज्जं बंधविधाणमिदि। तत्व बंधो जीवकम्मपदेसाणं सादियमणादियं च बंधं वण्णेदि। बंधगाहियारो अट्ठविह-सादि कम्म-बंधगे परू वेदि, सो च खुद्दाबंधे परू विदो। बंधणिज्जं बंधपाओग्ग-तदपाओग्ग-पोग्गल-दव्वं परू वेदि। बंध-विहाणं पयडिबंधं ठिदिबंधं अणुभागबंधं जा पदेसंबंध च परू वेदि।

६ बन्धन-बन्ध, बन्धक, बन्धनीय और बन्धविधान, इस प्रकार बन्धन अर्था-धिकारके चार भेद है। उनमेंसे बन्ध अधिकार जीव और कर्मप्रदेशोंका और अनादिरू प बन्धका वर्णन करता है। बन्धक अधिकार आठ प्रकारके कर्मोंकेबन्धकका प्रतिपादन करता है जिसका कथन क्षुल्लकबन्धमें किया चुका है। बन्धकेयोग्य पुद्‌गलद्रव्यका कथन बन्धनीय अधिकार करता है। बन्धविधान अधिकार प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध इन चार बन्धकेभेदोंका कथन करता है।

७ णिबंधण- णिबंधणं मूलुत्तरपयडीणं निबं-मूलप्रकृति धणं वण्णेदि। जहा चक्खिंदियं रू वम्मि कथन णिबध्दं, सोदिंदियं सद्दम्मि णिबध्दं, घाणिंदियं गंधम्मि णिबध्दं,जिब्भिंदियं रसम्मि णिबध्दं, फासिंदिं कक्खदादि-

७ निबन्धन- निबन्धन अधिकार और उत्तरप्रकृतियोंके निबन्धनका करता है। जैसे, चक्षुरिन्द्रिय रू पमें निबध्द है। श्रोत्रेन्द्रिय शब्दमें निबध्द है। घ्राणेन्द्रिय गन्धमें निबध्द है। जिह्वा

फासेसु णिबद्धं, तहा इमाओ पयडीओ एदेसु अत्थेसु णिबध्दाओ त्ति णिबंधणं परू वेदि, एसो भावत्थो।

इन्द्रिय रसमें निबध्द है और स्पर्शनेन्द्रिय कर्कश आदि स्पर्शमें निबध्द है। उसी प्रकार ये मूलप्रकृतियां और उत्तर-प्रकृतियां इन विषयोंमें निबध्द हैं। इस प्रकार निबन्धन अर्थाधिकार प्ररू पण करता है यह भावार्थ जानना चाहिए।

८ पक्कम-पक्कमेत्ति अणियोगद्दारं अकम्म-वर्गणा-सरू वेण ट्ठिदाणं कम्मइयवग्गणाखधाणं मूलुत्तर-पयडिसरू वेण परिणममाणाणं उत्तरप्रकृति-पयडि-ट्ठिदिअणुभागविसेसेण विसिट्ठाणं पदेसपरू वणं कुणदि।

८ प्रक्रम-प्रक्रम अर्थाधिकार, जो स्कन्ध अभीकर्मरू पसे स्थित नहीं है, किन्तु जो मूलप्रकृति और रू पसे परिणमन करनेवाले हैं और जो प्रकृति, स्थिति और अनुभागकी विशेषतासे वैशिष्ट्यको प्राप्त हैं ऐसे कर्मवर्गणास्कन्धोंके प्रदेशोंका प्ररू पण करता है।

९ उवक्कम- उवक्कमेत्ति अणियोगद्दारस्स चत्तारि अहियारा-बंधणोवक्कमो उदी-रणोवक्कमो उवसामणोवक्कमो विपरि णामोवक्कमो चेदि। तत्थ बंधीवक्कमो बंधविदियसमयप्पहुडि अट्ठण्णं कम्माणं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाणं बंधवण्णणं ाना-कुणदि। उदीरणोवक्कमो पयडि-ट्ठिदि-

९ उपक्रम- उपक्रम अर्थाधिकारके चार अधिकार हैं- बन्धनोपक्रम, उदीरणोप-क्रम, उपशामनोपक्रम और विपरिणा-मोपक्रम। उनमेंसे बन्धनोपक्रम अधिकार बन्ध होनेके दूसरे समयसे लेकर प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरू प इ वरणादि आठों कर्मोंके बन्धका वर्णन

अणुभागपदेसाणमुदीरणं परुवेदि। उव-सामणोवक्कमो पसत्थोवसामणमप्पसत्थो-वसामणाणं च पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेस-भेदभिण्णं परू वेदि। विपरिणाममुवक्कमो पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाणं देस-णिज्जरं सयलणिज्जरं च परू वेदि।	करता है । उदीरणोपक्रम अधिकार, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी उदीरणाका कथन करता है। उपशमनोपक्रम अधिकार, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशकेभेदसे भेदको प्राप्त हुए प्रशस्तोपशमना और अप्रशस्तोपशमनाका कथन करता है। विपरिणामोपक्रम अधिकार प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी देशनिर्जरा और सकलनिर्जराका कथन करता है।
१० उदय- उदयाणियोगद्दारं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसुदयं परू वेदि।	१० उदय- उदय अर्थाधिकार प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंके उदयका कथन करता है।
११ मोक्ख- मोक्खो पुण देस-सयलणिज्जराहि परपयडिसंकमोकड्डुणुक्कड्डुण-अध्दट्ठिदिगलणेहि पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसभिण्णं मोक्खं वण्णेदि त्ति अत्थभेदो।	११ मोक्ष- मोक्ष अर्थाधिकार देशनिर्जरा और सकलनिर्जराकेद्वारा परप्रकृतिसंक्रमण, उत्कर्षण अपकर्षण और स्थितिगलनसे प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका आत्मासे भिन्नहोना मोक्ष है, इसका वर्णन करता है।

१२ संकम- संकमेत्ति अणियोगद्दारं पयडि-
द्विदि-अणुभाग-पदेससंकमे परू वेदि।

१२ संक्रम- संक्रम अर्थाधिकार प्रकृति,
स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकेसंक्र
मणका प्ररू पणा करता है।

१३ लेस्सा - लेस्सेत्ति अणिओगद्दारं छदव्व-
द्रव्य
लेस्साओ परू वेदि।

१३ लेश्या- लेश्या अनुयोगद्वार छह
लेश्याओंका प्रतिपादन करता है।

१४ लेस्सायम्म- लेस्सापरिणामेत्ति अणियोग-
अन्त-
द्दारमंतरंग-छलेस्सा-परिणयजीवाणं बज्झ-
कज्जपरू पणं कुणदि।

१४ लेश्याकर्म- लेश्याकर्म अर्थाधिकार
रंग छह लेश्याओंसे परिणत जीवोंके
बाह्य कार्योंका प्रतिपादन करता है।

१५ लेस्सापरिणाम- लेस्सापरिणामेत्ति अणि-
अर्थाधि-
योगद्दारं जीव-पोग्गलाणं दव्व-भाव-
लेस्साहि परिणमणविहाणं वण्णेदि ।

१५ लेश्यापरिणाम- लेश्यापरिणाम
कार जीव और पुद्‌गलोंकेद्रव्य और
भावरू पसे परिणमन करनेकेविधानका
कथन करता है ।

१६ सादमसाद- सादमसादेत्ति अणियोगद्दार-
मेयंतसाद-अणेयंततोदाणं (?) गदियादि-
मग्गणाओ अस्सिदूण परू वणं कुणइ।

१६ सातासात- सातासात अर्थाधिकार
एकान्त सात, अनेकान्त सात, एकान्त
असात, अनेकान्त असातका गति आदि
मार्गणाओंकेआश्रयसे वर्णन करता है।

१७ दीहेरहस्य - दीहेरहस्सेत्ति अणिओगद्दारं-
पयडि-द्विदि-अणुभाग पदेसे अस्सिदूण

१७ दीर्घऱ्हस्व- दीर्घऱ्हस्व अर्थाधिकार
प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका

दीहेरहस्सत्तं परुवेदि।

आश्रय लेकर दीर्घता और ऱ्हस्वताका कथन करता है।

१८ भवधारणीय- भवधारणीए त्ति अणियोग- अर्थाधिकार,

द्दारं केण कम्मेण णेरइय-तिरिक्ख-मणुस- देवभवा धरिज्जंति त्ति परू वेदि।

१८ भवधारणीय- भवधारणीय

किस कर्मसे नरकभव प्राप्त होता है, किससे तिर्थंचभव, किससे मनुष्यभव और किससे देवभव प्राप्त होता है, इसका कथन करता है।

१९ पोग्गलत्त- पोग्गलअत्थेत्ति अणिओगद्दार दण्डा-

गहणादो अत्ता पोग्गला परिणामदो अत्ता पोग्गला उवभोगदो अत्ता पोग्गला आहा- पुद्‌गलोंका,

रदो अत्ता पोग्गला ममत्तीदो अत्ता पोग्गला परिग्गहादो अत्ता पोग्गला त्ति पुद्‌गलों-

अप्पणिज्जाणप्पणिज्जपोग्गलाणं पोग्ग- इस

लाणं संबंधेण पोग्गलत्तं पत्तजीवाणं च किये

परू वणं कुणदि।

१९ पुद्‌गलात्त-पुद्‌गलार्थ अनुयोगद्वार

दिकेग्रहण करनेसे आत्त पुद्‌गलोंका, मिथ्यात्वादि परिणामोंसे आत्त

उपभोगसे आत्त पुद्‌गलोंका, आहारसे आत्त पुद्‌गलोंका, ममतासे आत्त

का और परिग्रहसे आत्त पुद्‌गलोंका

प्रकार आत्मसात् किये हुए और नहीं

हुए पुद्‌गलोंका तथा पुद्‌गलकेसंबन्धसे पुद्‌गलत्वको प्राप्त हुए जीवोंका वर्णन करता

है।

२० णिधत्तमणिधत्त-णिधत्तमणिधत्तमिदि अणियोगद्दारं पयडि-ट्ठिदि अणुभागाणं णिधत्तमणिधत्तं च परू वेदि। णिधत्तमिदि किं? जं पदेसग्गं ण सक्कमुदए दादुं अण्ण-पयडिं वा संकामेदुं तं णिधत्तं णाम। तव्विवरीयमणिधत्तं।

२० निधत्तानिधत्त- निधत्तानिधत्त अर्थाधिकार प्रकृति, स्थिति और अनुभागके निधत्त और अनिधत्तका प्रतिपादन करता है। जिसमें प्रदेशाग्र उदय अथवा उदीरणामें नहीं दिया जा सकता है और अन्य प्रकृतिरू प संक्रमणको भी प्राप्त नहीं कराया जा सकता है, उसे निधत्त कहते हैं। अनिधत्त इससे विपरीत होता है।

२१ णिकाचिदमणिकाचिद- णिकाचिदमणि-काचिदमिदि अणियोगद्दारं पयडि-ट्ठिदि-अणुभागाणं णिकाचणं परू वेदि। णिका-चणमिदि किं? जं पदेसग्गं ण सक्कमोकड्डिदुमण्णपयडिं संकामेंदुमुदए दादुं वा तण्णिकाचिदं णाम। तव्विवरीदमणिका-चिदं।

२१ निकाचितानिकाचित- निकाचतानिकाचित अर्थाधिकार प्रकृति, स्थिति और अनुभागकेनिकाचित और अनिकाचित का वर्णन करता है। जिसमें प्रदेशाग्रका उत्कर्षण, अपकर्षण, परप्रकृतिसंक्रमण नहीं हो सकता और न वह उदय अथवा उदीरणामें ही दिया जा सकता है उसे निकाचित कहते हैं। अनिकाचित इससे विपरीत होता है।

२२ कम्मट्ठिदि-कम्मट्ठिदि त्ति अणियोगद्दारं

२२ कर्मस्थिति- कर्मस्थिति अनुयोगद्वार

सव्वकम्माणं सत्तिकम्मट्ठिदिमुक्कड्डणोक-
कर्मस्थितिका
ड्डणजणिदट्ठिदिं च परू वेदि।

संपूर्ण कर्मोंकी शक्तिरू प
और उत्कर्षण तथा अपकर्षण उत्पन्न
हुई कर्मस्थितिका वर्णन करता है।

२३ पच्छिमक्खंध-पच्छिमक्खंधेति अणिओग-
अर्थाधि-
द्दारं दंड-कपाट-पदर-लोगपूरणाणि तत्थ
लोकपूरण-
ट्ठिदि-अणुभागखंडयघादणविहाणं जोग-
होने-
किट्टीओ काऊण जोगणिरोहसरू वं कम्म-
क्खवणविहाणं च परू वेदि।

२३ पश्चिमस्कन्ध- पश्चिमस्कन्ध
कार दण्ड, कपाट प्रतर और
रू प समुध्दातका, इस समुध्दातमें
वाले स्थितिकांडकघात और अनुभाग-
काण्डकघातके विधानका, योगोंकी कृष्टि
करके होनेवाले योगनिरोधके स्वरू पका
और कर्मक्षपणके विधानका वर्णन
करता है।

२४ अप्पाबहुग- अप्पाबहुगाणिओगद्दारं
अदीदसव्वाणिओगद्दारेसु अप्पाबहुगं
परू वेदी।

२४ अल्पबहुत्व-अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार
अतीत संपूर्ण अनुयोगद्वारोंमें अल्प-
बहुत्वका प्रतिपादन करता है।

इन चौवीस अधिकारोंके विषयका प्रतिपादन पुष्पदन्त और भूतबलिने कुछ अपने स्वतंत्र विभाग से किया है जिसके कारण उनकी कृति षट्खण्डागम कहलाती है। उक्त चौवीस अधिकारोंमें पांचवां बंधन विषयकी दृष्टिसे सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। इसीके कुछ अवान्तर अधिकारोंको लेकर प्रथम तीन खण्डों अर्थात् जीवट्ठाण, खुद्दाबंध और बंधसामित्त-विचयकी रचना हुई है। इन तीन ख्ंडोंमें समानता यह है कि उनमें जीवका बंधककी प्रधानतासे

प्रतिपादन किया गया है। उनका मंगलाचरण भी एक है। इन्हीं तीन खण्डोपर कुन्दकुन्दद्वारा परिकर्म नामक टीका लिखी गई है। इन्हीं तीन खंडोंके पारंगत होनेसे अनुमानतः त्रैविद्यदेवकी उपाधि प्राप्त होती थी। इन्हीं तीन खण्डोंका संक्षेप सिध्दान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्रकृत गोम्मटसारके प्रथम विभाग जीवकांडमें पाया जाता है।

इन तीन खण्डोंके पश्चात् उक्त चौवीस अधिकारोंका प्ररू पण कृति वेदनादि क्रमसे किया गया है और प्रथम छह अर्थात् बंधन तकके प्ररू पणको अधिकार व अवान्तर अधिकारकी प्रधानतानुसार अगले तीन खण्डों वेदणा, वग्गणा और महाबंधमें विभाजित कर दिया गया है। इन तीन खण्डोंके विषय-विवेचनकी समानता यह है कि यहां बंधनीय कर्मकी प्रधानतासे विवेचन किया गया है। इनमें अन्तिम महाबंध सबसे बडा है और स्वतंत्र पुस्तकारू ढ है। जो उपर्युक्त तीन खण्डोंके अतिरिक्त इन तीनोंमें भी पारंगत हो जाते थे, वे सिध्दान्तचक्रवर्ती पदके अधिकारी होते थे। सि. च. नेमिचंद्रने इनका संक्षेप गोम्मटसार कर्मकांडमें किया है।

भूतबलि रचित सूत्रग्रन्थ छठवें बंधन अधिकारके साथही समाप्त हो जाता है। शेष निबन्धनादि अठारह अधिकारोंका प्ररू पण धवला टीकाके रचयिता वीरसेनाचार्यकृत है, जिसे उन्होंने चूलिका कहकर पृथक् निर्देश कर दिया है।

उपर्युक्त खण्डाविभागादिका परिचय प्रथम जिल्दकी भूमिकामें दिये हुए मानचित्रोंसे स्पष्टतया समझमें आ जाता है। उन चित्रोंमें बतलाई हुई जीवट्ठाणकी नवमीं चूलिका गति-आगतिकी उत्पत्तिके विषयमें एक सूचना कर देना आवश्यक प्रतीत होता है । वह चूलिका धवलामें वियाहपण्णत्ति से उत्पन्न हुई कही गई है। मानचित्रमें व्याख्याप्रज्ञप्तिके आगे (पांचवां अंग) ऐसा लिख दिया गया है, क्योंकि यह नाम पांचवे अंगका पाया जाता है। किन्तु दृष्टिवादके प्रथम विभाग परिकर्मके पांच भेदोंमें भी पांचवा भेद वियाहपण्णत्ति नामका पाया जाता है। अतएव संभव है कि गति-आगति चूलिकाकी उत्पादक वियाहपण्णत्तिसे इसीका अभिप्राय हो?

पांचवें पूर्ण पाणापवाद (ज्ञानप्रवाद) एक देक पाहुडका उद्धार गुणधराचार्यद्वारा गाथारू पमें किया गया। णाण- पवादकी बारह वस्तुओंमेंसे दशम वस्तुके तीसरे पाहुडका नाम 'पेज्ज' या 'पेज्जदोस' या 'कसाय' पाहुड था। इसीका गुणधराचार्यने १८० गाथाओं (और ५३ विवरण गाथादोंमें) उद्धार किया, जिसका नाम कसायपाहुड है। इसका परिचय स्वयं सूत्रकार और टीकाकारकेशब्दोंमें संक्षेपत: इस प्रकार है---

पुव्वम्मि पंचमम्मि दु दसमे वत्थुम्मि पाहुडे तदिये ।
पेज्जं त्ति पाहुडम्मि दु हवदि कसायाण पाहुडं णाम॑१॑

(((

गाहासदे असीदे अत्थे पण्णरसधा विहत्तम्मि ।
वोच्छामि सुत्तगाहा जइ गाहा जम्मि अत्थम्मि॑

टीका - सोलसपदसहस्सेहि वे कोडाकोडिएकसट्ठिलक्ख-सत्तावण्णसहस्स-वेसदवाणउदिकोटि-वासट्ठिलक्ख- अट्ठसहस्सक्खरुप्पण्णेहि जं भणिदं गणहरदेवेण इंदभूदिणा कसायपाहुडं तमसीदि सदगाहाहि चेव जाणावेमि त्ति गाहासदे असीदे त्ति पढमपइज्जा कदा। तत्थ अणेगेहि अत्थाहियारेहि परू विदं कसायपाहुडमेत्थ पण्णारसेहि चेव अत्थाहियारेहि परू वेमि त्ति जाणावणट्ठं अत्थे पण्णारसधा विहत्तम्मि त्ति विदियपइज्जा कदा । XXX।

(((

संपहि कसायपाहुडस्स पण्णारस अत्थाहियार परू वणट्ठं गुणहरभडारओ दो सुत्तगाहाओ पठदि-

पेज्जदोस-विहत्तिट्ठिदि-अणुभागे च बंधगे चेय।

वेदगएवजोगे वि य चउट्ठाण वियंजणे चे य॑
सम्मत्त-देसविरयी संजम-उवसामणा च खवणा च।
दंसण चरित्तमोहे अद्धापरिमाणणिद्देसो॑

इसका तात्पर्य यह है कि यह कसायपाहुड पंचम पूर्वकी दशम वस्तुके पेज्जनामक तृतीय पाहुडसे उत्पन्न हुआ है। इन्द्रभूति गौतमकृत उस मूलग्रन्थका परिणाम बहुत भारी था और अधिकार भी अनेक थे। प्रस्तुत कसायपाहुडमें १८० गाथाएं १५ अधिकारोंमें विभक्त हैं। गाथाओंमें सूचित पन्द्रह अधिकार जयधवलाकारने तीन प्रकारसे बतलाये हैं। इनमेंसे जो विभाग उन्होंने चूर्णिकार यतिवृषभकेआधारसे दिये हैं, वे निम्नप्रकार हैं---

१ पेज्जदोस — ५ उदय (कर्मोदय)

२ विहत्ती ट्ठिदि अणुभाग — ६ उदीरणा (अकर्मोदय) (वेदग

३ बंधग (अकर्मबंध) — ७ उवजोग

४ संकम (कर्मबंध) (बंधग — ८ चउट्ठाण

९ वंजण — १३ चरित्तमोहणीयस्स उवसामणा

१० दंसणमोहणीयस्स उवसामणा — १४ " " खवणा (संजम

११ " " खवणा (समत्त

१२ देसविरदी — १५ अद्धापरिमाणणिद्देस ।

इस प्राभृतकेआगे पीछेका इतिहास संक्षेपमें धवलाकारने इस प्रकार दिया है ---

' एसो अत्थो विउलगिरिमत्थयत्थेण पच्चक्खीकय-तिकालगोयरछद्दव्वेण वड्ढमाण भडारएण गोदमथेरस्स कहिदो। पुणो सो अत्थो आइरियपरंपराए आगंतूण गुणहरभडारयं संपत्तो । पुणो तत्तो आइरियपरंपराए आगंतूण अज्जमंखु नागहत्थीणं भडारयाणं मूलं पत्तो। पुणो तोहि दोहि वि कमेण जदिवसहभडारयस्स वक्खाणिदो । तेण वि XX सिस्साणुग्गहट्ठं चुण्णिसुत्ते लिहिदो। '

अर्थात् इस कसायपाहुडका मूल विषय वर्धमान स्वामीने विपुलाचलपर गौतम गणधरको कहा। वही आचार्य- परंपरासे गुणधर भट्टारकको प्राप्त हुआ। उनसे आचार्य-परंपराद्वारा वही आर्यमंखु और नागहस्ती आचार्योंके पास आया, जिन्होंने क्रमसे यतिवृषभ भट्टारकको उसका व्याख्यान किया। यतिवृषभने फिर उसपर चूर्णिसूत्र रचे।

गुणधराचार्यकृत गाथारूप कसायपाहुड और यतिवृषभकृत चूर्णिसूत्र वीरसेन और जिनसेनाचार्यकृत जयधवलामें ग्रन्थित है जिसका परिमाण ६० हजार श्लोक है। इस टीकामें आर्यमंखु और नागहत्थिके अलग अलग व्याख्यानके तथा उच्चारणाचार्यकृत वृत्तिसूत्रके भी अनेक उल्लेख पाये जाते हैं। यतिवृषभके चूर्णिसूत्रोंकी संख्या छह हजार और वृत्तिसूत्रोंकी बारा हजार बताई जाती है।

नंदीसूत्रमें पूर्वोंके प्रभेदोंमें पाहुडों और पाहुडिकाओंका भी निम्नप्रकार उल्लेख है। किन्तु उनका विशेष परिचय कुछ नहीं पाया जाता---

' से णं अंगट्टयाए बारसमे अंगे एगे सुअक्खंधे चोद्दस पुव्वाइं, संखेज्जा वत्थू, संखेज्जा चूलवत्थू संखेज्जा पाहुडा, संखेज्जा पाहुडपाहुडा, संखेज्जाओ पाहुडिआओ, संखेज्जाओ पाहुड-पाहुडिआओ संखेज्जाइं पयसहस्साइ पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा अणंता पज्जवा' ज आदि